# बाबा राम देव पर साम्यवाद का विफल प्रहार

पाचीनकाल से ही भारत में स्वास्थ्य में योग के महत्व को बढ–चढ कर स्थान दिया गया । योग को शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक समस्याओं तक का समाधान बनाने के प्रयत्न में योग के शारीरिक, मानसिक प्रभाव सूत्र आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार के पूर्व ही यम और नियम के पालन की अनिवार्यता घोषित की गई। योग के विषय में सामान्य – सा ज्ञान रखने वाला भी जानता है कि यम और नियम आंशिक पालन ही सामाजिक समस्याआ का अच्छा समाधान है तो पूरी तरह पालन की तो बात ही अलग है। समाज में ज्यों–ज्यों चरित्र की गिरावट आती गयी,, त्यों–त्यों यम और नियम पालन कठिन होता गया और धीरे–धीरे यम और नियम पालन असंभव होने से आसन, प्राणायाम प्रत्याहार के स्वास्थ्य वर्धक योग प्रयोग भी कमजोर पडें।

भारत में अनेक योग प्रमुखों ने यम नियम को छोडकर योग की शिक्षा देनी शुरू की किन्तु वे लोग भी योग को उतना सर्वसुलभ नही कर सकें, क्योकि वे लोग योग के शारीरिक लाभ की अपेक्षा मानसिक लाभ पर अधिक जोर देते रहे। बाबा रामदेव ने माना कि योग को सामाजिक, मानसिक लाभ की जटिल प्रक्रिया से निकालकर यदि शारीरिक लाभ तक सीमित कर दिया जाये तो यह सर्व सुलभ हो सकता है तथा धीरे धीरे अप्रत्यक्ष रूप से इसका मानसिक सामाजिक प्रभाव भी संभव है। रामदेव जी ने बहत तेज गति से इस दिशा में काम शुरू किया आसन और प्राणयाम को इन्होने परिवर्तन का मुख्य सूत्र बनाया और प्रत्याहार को भी उसके साथ जोड लिया। उन्होंने अपने संशोधित याग प्रयत्न के प्रचार प्रसार के लिए अत्याधुनिक मीडिया तकनीक का भी भरपूर उपयोग किया। उनके प्रयत्न और प्रचार–प्रसार का व्यापक प्रभाव हुआ। सारे भारत में स्वास्थ्य क लिए योग की महत्ता को स्वीकार किया गया। बडे से छोटे तक में योग से स्वास्थ्य की दिशा में सक्रियता बढी। अनेक मुसलमान भी छिप–छिप कर योग करने लगे। भारत की यह चमत्कारिक उनुगूँज सम्पूर्ण विश्व में सुनायी देने लगी। अनेक सरकारें स्वास्थ्य के लिए योग के सस्ते, स्वाभविक, सुलभ ओर प्राकृतिक तरीके की ओर आकर्षित भी हुई। भारत में बडी संख्या में साधारण लोग भी योग की शिक्षा देने और लेने लगे। वर्तमान में पहली बार योग योगियों से निकलकर सामान्य नागरिक के घर तक पहुॅचा। योग के प्रत्यक्ष प्रभाव से सामान्य जन ने स्वास्थ्य लाभ किया यह निर्विवाद है। साथ ही योग के अप्रत्यक्ष प्रभाव का मानसिक और सामाजिक लाभ भी दिखने लगा–यह भी निर्विवाद ही है।

रामदेव जी के योग के व्यापक प्रभाव से उनको अप्रत्याशित ख्याति भी मिली और धन भी। बडे–बडे व्यापारी भी रामदेव जी के इर्द–गिर्द मंडराने लगे। रामदेव जी भी अपनी ख्याति का लोभ संवरण नही कर सके। उन्होंने अपने योग का विस्तार आयुर्वेद तक कर दिया और आम लोगों को आयुर्वेदिक दवाओं के नुस्खे बताते–बताते आयुर्वेदिक दवा निर्माण तक जा पहुॅचें। सन्यासी बाबा रामदेव यम के पांच प्रारंभिक सूत्र, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह में से अपरिग्रह को भूल बैठे। उन्होने धन इकट्ठा किया या नहीं यह तो मुझे पता नही, किन्तु जिस तरह उन्होंने योग से आयर्वेद की ओर दिशा मोडो और आयुर्वेद से आगे जाकर भारतीय संस्कृति की सुरक्षा की ओर छलांग लगाई वह उनकी सांसारिकता की दिशा मानी जा सकती है। ये सारी दिशाएॅ गलत नहीं थीं क्योंकि ये दिशाएॅ लोक कल्याणकारी थीं किन्तु लोक कल्याण के लिए भी उन्होंने जिस सीमा तक स्वयं को आयुर्वेदिक दवा कारखाने के साथ जोडा वह उनकी भूल मानी जानी चाहिए।

रामदेव जी ने जिस तरह विदेशी पेयों का विरोध किया उसका न योग चिकित्सा से संबंध था न ही आयुर्वेद से। यदि आयुर्वेद के लिए शीतल पेय का विरोध करते होते तो उसकी भाषा भिन्न होती किन्तु रामदेव जी का विदेशी शीतल पेय विरोध आयुर्वेद से अधिक स्वदेशी पर केन्द्रित था। स्वाभाविक ही था कि रामदेव जी के प्रचार ने अनेक प्रकार के दुकानदारों को चिन्तित किया। रामदेव जी के योग से तो बहुत कम दुकानदार प्रभावित थे किन्तु इनके आयुर्वेद और स्वदेशी से अनेक पेशेवर एलोपेथी वाले, विदेशी बहुराष्टोय कंपनियॉ तथा विदेशी राजनीति करने वालों के समक्ष खतरा मंडराने लगा। रामदेव जी के स्वदेशी और भारतीय संस्कृति के धुंआधार प्रचार ने साम्यवादी विचारधारा को भी चिन्तित किया। साम्यवाद ने रामदेव जी के आयुर्वेदिक दवा कारखने में कानूनी अनियमितताओं के सहारे तोड़–फोड़ शुरू कर दी। ऐस कारखानों में श्रम कानूनों का उल्लंघन होता ही है। ऐसा एक भी कारखाना नहीं जो सभी कानूनों का अक्षरशः पालन कर सके। मजदूरों में अपनी घुसपैठ बनाकर साम्यवादियों ने बाबा रामदेव की दवा कारखानों की गतिविधियों की गुप्त जानकारी भी ली और धीरे–धीरे जानकारी एकत्रित करके एक दिन उसका विस्फोट कर दिया।

आयुर्वेदिक दवा कारखाने में मजदूर हितों का उल्लंघन सामान्य भारतीय के मन में रामदेव जी की छवि गिराने के लिए अपर्याप्त मानकर ही साम्यवाद ने दवा में पशु और मानव हड्डी के प्रयोग जैसे ब्रम्हास्त्र का प्रयोग किया। मैं नही कह सकता कि साम्यवादियों का उद्देश्य अपने मजदूरों के हित से अधिक जुडा था या रामदेव जी की प्रतिस्ठा के आघात से। किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि साम्यवादी भी अपने कार्य को मजदूरों से बढ़ाते–बढ़ाते रामदेव पतन तक उसी तरह भ्रम में बढते चले गये जिस भ्रम में रामदेव जी ने योग से आयुर्वेद और आयुर्वेद से भारतीय संस्कृति रक्षण तक बढ़ाया था। किन्तु अपूर्ण तैयारी और साम्यवाद की सामाजिक विश्वसनीयता के अभाव ने उनके बम्हास्त्र के प्रभाव को विफल कर दिया। साम्यवादियों ने जो आक्रमण किया उसमें कई कमजोरियॉ थीं

क. उनका आक्रमण रामदेव जी के कानूनी उल्लंघन तक सीमित था। दवा में पशु या मानव हड्डी का प्रयाग हुआ यह आयुर्वेदिक दवाओं के लिए बहुत अधिक चौंकाने वाली बात नहीं थी। यह मात्र एक कानून का उल्लंघन था कि दवा पर जानकारी लिखना कानूनी बाध्यता है।

ख. साम्यवादी रामदव जी की कानूनी अनियमितताओं को जितना गंभीर विषय बनाना चाहते थें, उसमें उसने स्वयं ही कानूनी प्रक्रियाओं की अनदेखी करने की भूल कर दी। दवा किसी शासकीय व्यवस्था के अन्तर्गत खरीदकर तथा सील कराकर जॉच करानी चाहिए थी जो उन्होंने इस तरह पूरी की जैसे बंगाल में जॉच हो रही हो। इस कमी के कारण रामदेव जी को नमूने इन्कार करने का मजबूत बहाना मिल गया।

ग. साम्यवादी विदेशों से धन लेकर राजनीति करने के लिए विख्यात है। आजतक इन पर ऐसा कोई आरोप नहीं कि इन्होंने कभी पूॅजीवादी देशों या कम्पनियों से धन लिया हो किन्तु विश्वसनीयता के अभाव ने रामदेव जी का प्रचारित करने का अवसर दे दिया कि साम्यवादियों ने बहुराष्टोय कंपनियों से साठगांठ की है।

घ. साम्यवादियों की भारतीय सांस्कृतिक गतिविधियों के विरूद्व सोच सर्वविदित है। मांसाहार या आयुर्वेद के विषय में इनकी साच कभी सकारात्मक नहीं रही। भारतीय सांस्कृतिक भावना की सुरक्षा की इतनी चिन्ता को भारतीय जनमानस स्वाभाविक सोच से अधिक कोई खराब नीयत समझ रहा था। क्योंकि साम्यवाद ने ऐसे ही अन्य सामानों की कभी चिन्ता नहीं की। यदि साम्यवादी वृन्दा जी की अपेक्षा किसी साधु सन्यासी के मुॅह से यह रहस्योद्घाटन कराने की चालाकी करते तो शायद कुछ अधिक प्रभाव होता। किन्तु संस्कृति विरोध के लिए प्रसिद्ध संगठन द्वारा आक्रमण किये जाने से रामदेव जी को प्राकृतिक विश्वसनीयता का लाभ हुआ।

च. रामदेव जी के प्रचार से योग, आयुर्वेद और स्वदेशी की भावना को व्यापक विस्तार मिल रहा था। सामान्य लोगों ने रामदेव जी पर आक्रमण को योग, आयुर्वेद तथा स्वदेशी के विरूद्ध सड़यंत्र माना। विशेसकर तब, जब ऐसा आक्रमण योग, आयुर्वेद और स्वदेशी के विपरीत सोच और आचरण वाले सगठन और व्यक्ति द्वारा किया जावे।

कुल मिलाकर रामदेव जी पर साम्यवादियों का आक्रमण साम्यवादियों के लिए ही घातक हुआ। साम्यवादी अब तक सम्पूर्ण विश्व की राजनीति में सुनियोजित और दीर्घकालिक योजना अनुसार काम करने के लिए प्रसिद्ध हैं। किन्तु इस बार या तो उनकी योजना फेल हुई या वृन्दा जी ने अकले की

योजना पर ही इतना बड़ा आक्रमण कर दिया। कुछ भी हो लेकिन साम्यवाद को इस अनावश्यक और बचकानी हरकत से बहुत क्षति हुई है। लालू प्रसाद यादव ने इस विषय पर सबसे अधिक स्वाभविक और स्पष्ट टिप्पणी की कि दवा यदि मानव हित में है तो यह चिंता का विषय नहीं कि उसमें मानव की हड्डी मिली है या दानव की। अन्य राजनेताओं ने भी जनभावना का आदर किया और रामदेव जी के पक्ष में आवाज उठाई।

इस घटना ने रामदेव जी का तात्कालिक लाभ और दूरगामी क्षति पहुॅचाई है। उन्होंने आक्रमण को सफलता पूर्वक झेलकर स्वयं को विजेता के रूप में स्थापित किया है किन्तु इस संघर्स में उन्हें कई स्थानों पर सत्य का गला भी घोटना पड़ा है। रामदेव जी को कई बार यह असत्य दुहरानां पड़ा कि ये दवाएॅ उनके कारखाने की नहीं है। उन्हें कई बार यह कहना पड़ा कि वे श्रम कानूनों का पूरी तरह पालन करते है। उन्हें कई बार यह भी कहना पड़ा कि उनकी दवाओं में मानव या पशु की हड्डियों का काई अंश नही है।

मैं मानता हूॅ कि भारत के कानूनी जाल से बचने के लिये असत्य बोलना एक मजबूरी है किन्तु ऐसी असत्य की मजबूरी से भी आत्मबल तो घटता ही है। अब रामदेव जी विदेशी कंपनियों पर या एलोपैथी पर उतना तीव्र और प्रभावशाली आक्रमण नहीं कर पायेंगे जितना वे पहले करते थें, क्योंकि स्वामी जी के योग के यम और नियन से सत्य भी संदेहास्पद हो गया है, अपरिग्रह तो खतरे में था ही। मैं चाहता हूॅ कि स्वामी रामदेव जी ने विश्व को स्वास्थ्य क लिये योग का चमत्कारिक नुस्खा देकर जो प्रतिस्ठा प्राप्त की है तथा जनकल्याण किया है उसे विश्व विजेता बनने की दौड़ में क्षति न पहचाई जाये।

## 1. श्री सुनील एक्का, विशाल कुंज दिल्ली 110027

मैं कई वर्षों से लोक स्वराज्य मंच के माध्यम से लोक स्वराज्य कार्य से जुड़ा रहा । हम अपने सब साथियों के बीच घूम घूम कर लोक स्वराज्य की आवश्यकता बताते थे, और शासन के अधिकार दायित्व तथा हस्तक्षेप न्यूनतम होने के पक्ष में आन्दोलन की बात करते रहते थे। अब सितम्बर के बाद हम लोगों ने लोक स्वराज्य आन्दोलन के स्थान पर व्यवस्था परिवर्तन अभियान शुरू कर दिया। अब हमारा ध्येय वाक्य ''शासन के अधिकार दायित्व तथा हस्तक्षेप न्यूनतम होने के पक्ष में आन्दोलन,'' से बदलकर'' राजनीति से दूर रहकर राजनीति पर अंकुश का अद्भूत प्रयास'' कर दिया गया। यह बताइये कि लोक स्वराज्य आन्दोलन आर व्यवस्था परिवर्तन आन्दोलन के बीच अन्तर क्या है। तथा आप बार बार अपना स्टेन्ड क्यो बदल रहे है।

उत्तरः– आप कई वर्षो से हमारी टीम के महत्वपूर्ण साथी है। प्रत्येक घटना क्रम की आपको पूरी जानकारी है। आपने घटनाओं के साथ साथ कार्यक्रमों मे बदलाव के प्रति जो चिन्ता व्यक्त की है वह चिन्ता स्वभाविक है। और विचारणीय भी है। हमलोगा ने मिलकर पंद्रह वर्षो का एक अनुशंधान किया। अनुशंधान का निष्कर्ष निकला कि ग्यारह समस्याएं लगातार बढ़ रही है। इनके समाधान के लिये संविधान में व्यापक संशोधन करने पडेगें। जो मुख्य रूप स पांच परिणामों को लक्ष्य करके किये जायेगें 1) सत्ता का अकेन्द्रीकरण 2) अपराध नियंत्रण की गारंटी 3) आर्थिक असमानता में कमी 4) श्रम मूल्य वद्धि 5) समान नागरिक संहिता । चार नवम्बर निन्यानवें तक हमारा सारा ध्यान पांच मुद्दे आधारित संविधान संशोधन अभियान पर केन्द्रीत था रामानुजगंज शहर में प्रयोग शुरू हुआ और दुसरी ओर संविधान संशोधन अभियान की योजना बनने लगी। बहुत सोचने के बाद निष्कर्ष निकला कि हमें आन्दोलन के लिये पहले मुद्दे पर ही काम करना चाहिये जिसका नाम हो लोक स्वराज्य और जिसका घोष वाक्य हो शासन के अधिकार दायित्व तथा अधिकार न्यूनतम होने के पक्ष में सक्रिय व्यक्तियों तथा संगठनों का समूह । इस आधार काम प्रारंभ किया गया। किन्तु वर्ष 2004 आते आते यह महसूस किया गया कि लोकस्वराज्य नाम आन्दोलन तक ठीक है किन्तु शेष चार मुद्दों को पूरी तरह छोड़ देता है। जबकि भारत की जनता अपराध, आर्थिक, असमानता, श्रम शोषण तथा नागरिक संहिता में भेद भाव से भी बहुत दुखी है। कही सन् पचहतर सरीखी भूल न हो जावे कि हमारा आन्दालन लोकस्वराज्य की सफलता के बाद शेष मुद्दे भूल जावें । बहुत गंभीर मंत्रणा हुई और सोचा गया कि आन्दोलन का नाम तो व्यापक अर्थ समेटे हुये हो किन्तु आन्दोलन के तात्कालिक सूत्र एक बिन्दू तक केन्द्रीत हो। व्यवस्था परिवर्तन एक ऐसा शब्द है जिसमें सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक, संवैधानिक आदि सभी प्रकार की व्यवस्था परिवर्तन का समावेश हो जाता है। लोकस्वराज्य इस अभियान का प्रथम चरण मात्र होगा, किन्तु सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन तक इसे बढ़ाया जा सकता है। हमने इस लिये ही घोषित किया कि व्यवस्था परिवर्तन का अर्थ है। ''राजनीति से दूर रहते हुये राजनीति पर नियंत्रण का अद्भूत प्रयास''। जब समाज सत्ता की अपेक्षा अधिक शक्ति सम्पन्न होगा तो सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन कर लेगा। यद्यपि लोकस्वराज्य शब्द भी लगभग वैसा ही अर्थ रखता है। किन्तु व्यवस्था परिवर्तन शब्द व्यापक अर्थ और प्रभावोत्पादक समझ कर स्वीकार किया गया है। व्यवस्था परिवर्तन अभियान की पूर्णतः की दो चरण तय किये गये हैं 1. राजनीति पर नियंत्रण हेतु चार सूत्रीय संविधान संशोधन का आंदोलन चलाते हुए अन्य सभी मुद्दों पर बहस चलाकर निष्कष तक पहुॅचने का प्रयास। 2. अन्य सब मुद्दो को लागू करवाकर सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करना।

दूसरे चरण पर कार्य पहले चरण की सफलता के बाद शुरू होगा। पहले चरण के दो भाग हैं 1. लोक स्वराज्य 2. अन्य संवैधनिक संशोधनों पर समाज में बहस। लोक स्वराज्य के लिये लोक स्वराज्य मंच सहित कई सस्थाएॅ व्यापक आंदोलन हेतु सक्रिय है। जिसमें अभी एक लाख सत्याग्रही तैयार करके सितम्बर तक आंदोलन की घोषणा होनी है। इस कार्य में सब लोग पूरी तरह लगे हुए हैं ही। अन्य सभी सामाजिक राजनैतिक धार्मिक मुद्दों पर ज्ञान यज्ञ मंडल बहस छेड़ने में लगा हुआ है। दोनो दिशाओं में पूरी तत्परता से काम जारी है। इसलिए लोक स्वराज्य और व्यवस्था परिवर्तन नाम से कोई समस्या नही आने वाली है। व्यवस्था परिवर्तन नाम व्यापक अर्थ और लोक स्वराज्य को अपने अंदर पूरी तरह समेटे हुए ही है।

## 2. श्री ओमप्रकाश दुबे, नोएड़ा उत्तर प्रदेश

मरे कई साथो आर्थिक आजादी अभियान से भी जुड़े हुए हैं और लोक स्वराज्य या व्यवस्था परिवर्तन अभियान से भी। ये कई बार प्रश्न करते हैं कि नई परिवर्तित संवैधानिक व्यवस्था में एक गरीब और एक अमीर के बीच अधिकतम कितना अंतर होगा वे यह भी पूछते हैं कि भारत में एक सर्वोच्च पद वाले और एक चपरासी के वेतन में अधिकतम अंतर क्या होगा उनके कथनानूसार दोना के बीच अंतर की कोई न कोई सीमा होनी चाहिये

उत्तरः – आर्थिक असमानता और वेतन के अंतर की सीमा के विषय में मैं पीछे के ज्ञान तत्वों मे कई बार लिख चुका हूॅ। आर्थिक आंदोलनों से जुड़े लोग प्रश्न करना तो जानते हैं किन्तु उत्तर देना नहीं। यदि उनके प्रश्न के बदले मे उत्तर न देकर हम उनसे प्रश्न करें कि उनकी नई अर्थव्यवस्था में शासन और शासित के बीच अधिकारों का अंतर क्या होगा संसद को या शासन को हमारे व्यक्तिगत या पारिवारिक मामलों में कानून बनान का अधिकतम अधिकार क्या होगा शासन हम पर अधिकतम कितना तक कर लगा सकता है संसद के अपने वेतन भत्तों की अधिकतम सीमा क्या होगी सांसद कितनी तक सुविधाएॅ ले सकते हैं आदि। इन प्रश्नो का ये लोग उत्तर न देकर सिर्फ आर्थिक मुद्दों पर प्रश्न करते है। तो संदेह होता है कि कही हमारे मित्र सत्ता के विकेन्द्रीयकरण के मुददे पर जान–बूझकर तो चुप नहीं हैं। व्यवस्था परिवर्तन अभियान की सत्ता और अर्थ के विकेन्द्रीयकरण के संबंध में अपनी स्पष्ट नीति है। जिसमें सत्ता के विकेन्द्रीकरण को प्रथम चरण के रूप में आंदोलन का मुद्दा चुना गया है। और ' शेष चार बिन्दु 1. अपराध नियंत्रण। 2. आर्थिक असमानता में कमी। 3. श्रम मूल्य वृद्धि। 4. समान नागरिक संहिता पर संविधान संशोधन दूसरे चरण में होना है। आप अपने साथियों के उत्तर के साथ–साथ राजनीतिक सीमाओं संबंधी प्रश्न भी कीजिए। आप यदि टेढ़ा उत्तर देना चाहेगें तो एक लाइन का उत्तर दे सकते है कि गरीब आर अमीर या चपरासी और राष्टपति के बीच वेतन का उतना ही अंतर होगा जितना शासन और शासित के बीच तथा मालिक (जनता) और मैनेजर (संसद) के बीच

अधिकारों का फर्क होगा। यदि हमारे मित्र यह अंतर शून्य करनें की योजना बनावे तो आर्थिक अंतर और वेतन का फर्क भी शून्य स्वीकार करने में मुझे कोई आपत्ति नही है।

## 3. श्री ऋषभ कासलीवाल, जयपुर राजस्थान।

संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण में जानबूझ कर कोई गलती की ऐसा मानने का न कोई आधार है, न ही विश्वास। किन्तु उन्होने ऐसी कल्पना नही की थी कि पचास–पचपन वर्षों में ही हमारे देश का औसत चरित्र इतना गिर जायेगा। किसी प्रदेश में तो राष्टपति शासन का प्रावधान है किन्तु केन्द्र में यदि ऐसी स्थिति आती है तो क्या होगा? क्या आप महसूस करते है कि संविधान के पुनर्लेखन का समय आ गया है? राजस्थान पत्रिका ने भी अपने संपादकीय में यह प्रश्न उठाया है।

उत्तर :– मुझे अपने संविधान निर्माताओं के स्वतंत्रता पूर्व के त्याग और बलिदान को देखकर तो उनकी नीयत पर संदेह नही होता है। किन्तु उन्होने जिस तरह संसद का अन्य वर्गो की अपेक्षा अधिकार दिये उससे संदेह तो होता ही है। संसद को मैनेजर की अपेक्षा कस्टोडियन के अधिकार देना तो हम उनकी भूल मान भी सकते है किन्तु संसद को यह अधिकार सौपना कि वह जब तक चाहे तब तक कस्टोडियन रह सकती है, यह तो उनकी नीयत पर संदेह पैदा करता हैं। आरक्षण की उन्होने अवधि तय की। भाषा की भी उन्हाने अवधि बतायी, किन्तु शासन कस्टोडियन कब तक रहेगा इसकी कोई अवधि तय न करने जैसी गंभीर भूल भी उनकी नीयत पर संदेह का आधार नही हैं तो मै यह कह सकता हूँ कि वे लोग संविधान बनाने जैसे महत्वपूर्ण कार्य के योग्य नही थे।

यदि प्रदेश सरकारे ठीक स काम न करें तो केन्द्र सरकार राष्टपति शासन लगाकर उनके पंख कतर सकती है। उसी तरह हम चाहते हैं कि केन्द्र सरकार के पंख कतरने के लिए संविधान में ऐसा संशोधन हो कि संसद कस्टोडियन मैनेजर बन जावे। संसद के अधिकार, दायित्व तथा हस्तक्षेप पांच विभाग 1. सेना 2. पुलिस 3. वित्त 4. विदेश। 5. न्याय। तक सीमित करके अन्य सभी विभाग परिवार, ग्रामसभा, जिला सभा, प्रदेश सभा और केन्द्र सभा के बीच समाज इस तरह से बॉट ले कि केन्द्र सरकार उसमें कोई हस्तक्षेप न कर सकें। लोग पूछते है कि रेल और वैज्ञानिक अनुसंधान ग्राम सभा कैसे चलायेगी? मेरे विचार से ऐसे कार्य केन्द्र सभा तो चला लेगी। हम ऐसे विभाग जो गांव जिला या प्रदेश से उपर के होंगे वे केन्द्र सभा को दे देगे। इस तरह केन्द्र सरकार पर समाज का शासन हो जायेगा। और उनकी स्वेच्छाचारिता कम हो जायेगी।

इन सब कार्यों के लिये संविधान क पुनर्लेखन की आवश्यकता नही है। संविधान के अनावश्यक अनुच्छेदो को कम करके उसे छोटा करना होगा, उसके किन्तु परन्तु भी कम कर दिये जायेंगे। तथा कुछ धाराओं में संशोधन से काम चल जायेगा। फिर भी यदि कोई हमारे प्रयास को पुनर्लेखन कहे तब भी हमें कोई आपत्ति नही है क्योंकि हम न तो अपने किसी संविधान निर्माता के एजेन्ट है, ना ही हम उनके नाम पर अपनी राजनीतिक दुकानदारी चलाना चाहते है। हम तो चाहते है कि गुणदो" ा के आधार पर संविधान और संविधान निर्माताओं की क्षमता और नीयत की तटस्थ समीक्षा मात्र करते रहें।

## 4. श्री महेश भाई, विजयीपुर, गोपालगंज बिहार,

ज्ञानतत्व एक सौ तीन में कुछ पाठकों के पत्र पढ़े। सर्वनारायण दास जी सरीखे विद्वान आर निष्ठावान के विचारों में गांधी विनोबा जय प्रकाश के विचारों के प्रकाश स आगे बढ़कर उनके कथनों और शब्दों की प्रामाणिकता में उलझने से समय और शक्ति का भी अपव्यय होगा ओर हम धीरे धीरे पंथ और वाद की ओर भी अनायास ही बढ़ते चले जायेंगे। यदि विनोबा जी के शब्द ही चुने जाये तो उन्होने लिखा था कि अक्षर वेदो में होते है और अर्थ जीवन में खोजना पडता है। हम दलिया पचाने की क्षमता रखने वाले आम नागरिक समूह को शहद देशी घी का हलुआ खिला–खिलाकर उसे बीमार तो कर सकते हैं किन्तु स्वस्थ नहीं।

ग्यारह दिसम्बर के दैनिक हिन्दुस्तान में सु श्री मृणाल पांडे ने समाजवाद के लिये एक शोक गीत लिखा। सच भी है कि समाजवाद के शब्दार्थ और भाषार्थ को समाजवादियों ने मंडल, कमंडल, आरक्षण प्रतिरक्षण के समाज तोड़क दर्शन से जोड़कर विष मिश्रित अमृत बना दिया। मैं मृणाल जी के इस विचार से सहमत हूँ कि समाजवादियों के अहम् के कारण ही समाजवाद बिखर गया। जो है की अनदेखी करक अतीत की सैद्धान्तिक बहस दिशा विहीन कर देगी ही।

मेरा ज्ञानतत्व के पाठकों से भी निवेदन है कि वे व्यवस्था परिवर्तन अभियान और बजरंगलाल जी के विचारो को वैसा ही संदर्भ प्रदान करें। इस समय तो हमें करो या मरों की भूमिका में उतर कर सहयोगियों के साथ कुछ कर गुजरने की तैयारी रखना चाहिये। अन्यथा जिन मृणाल पांडे जी न समाजवादिया तथा सम्पूर्ण क्रान्ति के लिये शोक गीत लिखने की आवश्यकता महसूस की वैसे प्रयत्न की पुनरावृत्ति हो सकती हैं।

उत्तर : – मैं बचपन से ही समाजवादी विचारों का रहा किन्तु मैने भारत के अन्य अनेक समाजवादियों से समाजवाद की जो परिभाषा सुनी तो मैं चक्कर में पड़ गया कि आखिर समाजवाद है क्या? मैने तो सुन रखा था कि समाजवाद का एक ही अर्थ है कि समाज में शासक और शासित का भेद न्यूनतम हो। कोई व्यक्ति किसी अन्य को सत्ता या सम्पत्ति के आधार पर किसी मामलें में मजबूर न कर सके। भारत के एक समाजवादी ने रेल यात्रा की तीन श्रेंणियों में से तृतीय श्रेणी को हटाकर दो श्रेणी बनाने को समाजवाद का क्रान्तिकारी कदम घोषित किया और कुछ दिनों बाद रेल यात्रा में तीन के स्थान पर छः श्रेणियॉ बन गई किन्तु नाम तृतीय श्रेणो कों हटाना आवश्यक समझा गया। समाज में गरीब और अमीर नाम से वर्ग निर्माण करके वर्ग संघ" ा तक ले जाना भी समाजवादी कदम माना गया जबकि समाजवाद के समाज में गरीब और अमीर एक समान रूप से शामिल होते हैं। मैने आज तक कभी नहीं सुना कि अमीर व्यक्ति समाज से बाहर होता है। अमीर और गरीब के बीच आर्थिक विषमता कम हो यह तो समाजवादी लक्ष्य मैने सुना था किन्तु समाजवाद के नाम पर वर्ग संघ" र्ा को प्रोत्साहित करें भले ही वि" ामता बढ़ती रहे, समाजवाद का ऐसा भी अर्थ मैं स्वतंत्रता के बाद लगातार देख सुन रहा हूँ। धीरे–धीरे तो समाजवाद के नाम पर सामाजिक जातीय वर्ग निर्माण के भी अनेक नये–नये अर्थ निर्मित हुए। मैं तो समझ ही नहीं सका कि समाजवाद का वास्तविक आशय क्या है? क्योंकि नेहरू जी का सत्ता का केन्द्रीयकरण भी समाजवाद ही था और जयप्रकाश जी का सत्ता का विकेन्द्रीयकरण भी समाजवाद ही रहा। भाजपा ने अपनी सुविधानुसार गांधीवादी समाजवाद बना लिया। मुलायम सिंह जी और लालू प्रसाद जी भी जैसी सामाजिक संरचना में लगे हैं वह सब भी समाजवाद की किसी स्व निर्मित परिभाषा के अन्तर्गत समाजवाद ही है। मैंने तो बचपन में लोहिया जी से सुना था कि समाजवाद का अर्थ है सत्ता और धन से भी अधिक निर्णायक शक्ति समाज के पास होना। मैं तो बचपन से आज तक समाज के शक्तिशाली होने को ही समाजवाद समझता रहा हूँ। पता नही मेरी समझ कितनी ठीक है कितनी गलत।

## 5. श्री रामसेवक गुप्त, रामानुजगंज, सरगुजा, छत्तीसगढ़

आपने दिल्ली कार्यालय ले जाते समय घोि" ात किया था कि व" ा आठ या नव तक भारत को सम्पूर्ण संवैधानिक राजनैतिक व्यवस्था म आमूल चूल परिवर्तन होगा और तब सामाजिक व्यवस्था में सुधार की शुरूआत होगी। आपको दिल्ली गये आठ माह हो गये किन्तु भारत की संवैधानिक राजनैतिक व्यवस्था में सुधार की जगह बिगाड़ ही दिख रहा है। नये–नये भ्र" टाचार उजागर हो रहे हैं। राजनैतिक दलों में चरित्र गिर रहा है। आप बतायें कि आपके आठ माह के प्रयत्न अब तक कितने सफल हुए या यदि सफलता नही है तो आप क्यों नहीं रामानुजगंज लौट जाते ह।

उत्तरः– मैने दिल्ली आते समय यह कहा था कि पांच व" ाें में राजनैतिक व्यवस्था बदलेगी ओर तब सामाजिक व्यवस्था सुधरनी शुरू होगीं। मेरा कथन यह कभी नहीं था कि राजनैतिक व्यवस्था सुधरेगी या राजनैतिक व्यवस्था बदले बिना ही सामाजिक व्यवस्था सुधर जायेगी। व्यवस्था का प्रभाव व्यक्ति पर होता है और व्यक्ति ही व्यवस्था का चलाते है। समाज में अभी भ्र" टाचार अस्सी प्रतिशत और अपराध दो प्रतिशत ह। राजनीति में भ्रष्टाचार निन्यानवे प्रतिशत और अपराध वृत्ति सोलह प्रतिशत के करीब है। प्रमाणित है कि समाज का प्रभाव राजनीति पर न पड़कर राजनीति का प्रभाव समाज पर पड़ रहा है। सर्वोदय और संघ ने व्यवस्था परिवर्तन का मार्ग न चुनकर चरित्र निर्माण का मार्ग चुना और प्रयत्न किया कि राजनीति का चरित्र सुधरेगा। संघ और सर्वोदय ने सामाजिक चरित्र निर्माण के माध्यम से राजनैतिक चरित्र सुधार की भरसक आर ईमानदार काशिश की किन्तु परिणाम विपरीत हुआ। राजनैतिक चरित्र भी गिरा और सामाजिक चरित्र भी गिरा ही। यहॉ तक विपरीत परिणाम हुआ कि संघ का स्वंय का आन्तरिक चरित्र भी पहले जैसा नही रह गया है और सर्वोदय की तो अपनी शक्ति ही क्षीण होती जा रही है। डाक्टर खुद ही उसी बीमारी से ग्रस्त हो गया है क्योंकि चरित्र पतन छुआछूत की बीमारी है। आर्य समाज, गायत्री परिवार, आसारामबापू रामदेव जी महाराज आदि अनेक संत संस्थाओं ने भी सामाजिक चरित्र निर्माण की बहुत कोशिश की। उनके प्रयत्नों का समाज पर प्रभाव भी पड़ा, किन्तु इन संस्थाओ के प्रभाव की अपेक्षा राजनीति का समाज पर विपरीत प्रभाव अधिक पड़ा। परिणाम स्वरूप कुल मिलाकर समाज में चरित्र की गिरावट का क्रम जारी ही रहा भले ही इन संस्थाओं ने कितना भी प्रयास क्यों न किया हो।

इस सम्पूर्ण राजनैतिक सामाजिक चरित्र पतन तथा सामाजिक धार्मिक संस्थाओं के प्रयत्नों की असफलता के मुद्दे नजर हम आप सबने मिलकर उस असफलता के कारणों की लम्बे समय तक खोज की और पाया कि राजनैतिक व्यवस्था बदले बिना किसी चरित्र सधार का निर्णायक प्रभाव नही होगा। अतः मैने अंतिम निष्कष निकलने क बाद दिल्ली से आंदोलन की घोषणा की है। हमारे आंदोलन से न तो राजनीति में कोई सुधार दिखेगा न समाज में। क्योकि परिणाम का प्रभाव तो तब होगा जब व्यवस्था बदलेगी और व्यवस्था बदलने की अनुमानित अवधि मैने दो हजार नव के आस–पास बताई है। इसलिये आप सबको परिणाम की जल्दी नहीं करनी चाहिए।

मैं और मेरे साथी पूरा प्रयत्न कर रहे हैं। दिल्ली में सफलता भी बहुत अच्छी है। आर्यसमाज, राष्टोय स्वयं सेवक संघ, समाजवादी तथा साम्यवादियों से निरंतर संवाद जारी है। आर्य समाज के प्रमुख लोग सहमत भी हो गये है। जयप्रकाश आंदोलन से जुड़े कई लोग इन व्यवस्था परिवर्तन प्रयत्नों से जुड़कर दिन–रात काम कर रहे हैं। सफलता निश्चित है। किन्तु राजनैतिक व्यवस्था परिवर्तन किश्तों में न होकर एक बार में होगा जिसके प्रयत्न अभी से दिखने शुरू होंगे। राजनैतिक चरित्र पतन हमारे प्रयत्नों की सफलता में सहायक ही होंगे, बाधक नही। इसलिये धैर्य पूर्वक परिणामों की प्रतीक्षा या प्रयत्नों में सहयोग करने की आवश्यकता है।

यदि मुझे परिणाम असफल दिखे तो मैं रामानुजगंज आउंगा ही अन्यथा चार वर्षों में व्यवस्था परिवर्तन अभियान सफल और पूरा होने के बाद रामानुजगंज आउँगा ही। म तो सदा ही आप सबका ही हूँ और रहूँगा। अभी आप सबकी ओर से व्यवस्था परिर्वतन के डेपुटेशन पर मानकर चलियें।

3/1/106 प्रश्न–ज 6. श्री कृष्ण कुमार जी खन्ना, मेरठ, उत्तर प्रदेश

मैं जहॉ भी बैठक में जाता हूँ वहॉ निम्न प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते। आपके ज्ञान तत्व से भी इन प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर नहीं मिलता है।

1. देश मे लोंगो की आय में अधिकतम फर्क की कोई सीमा होगी या जो व्यक्ति किसी तरह लूट–मारकर, छीन झपट कर अपना बना ले उसे ही मान्यता दे दी जावे?

2. श्रम मूल्य वृद्धि के आप समर्थक हैं। किन्तु श्रम मूल्य कैसे बढगा?

3. शिक्षा पद्धति कैसी होगी? शिक्षा का माध्यम कानून के अनुसार क्या होगा?

4. चुनाव प्रणाली क्या होगा? सर्वसम्मत चुनाव की भूमिका क्या होगी? विधायिका होंगी या नही?

5. न्याय का कानूनी ढांचा क्या होगा?

6. धन,धरती और संग्रह के स्वामित्व की सीमा की आवश्यकता है या आर्थिक क्षेत्र बेलगाम हो?

7. बेरोजगारी, गरीबी और भ्रष्टाचार कैसे दूर होगे?

आप बलात्कार, मिलावट, धोखाधडी,, डाका आदि का तो बुरा मानते हैं किन्तु आप भ्रष्टाचार को बुरा नही मानते। शायद आपकी नजर में भ्रष्टाचार बुद्धिमत्ता है। इन बिन्दुओं पर आपके विचार और स्पष्ट हों तो आगामी सत्याग्रह में मदद होगी।

उत्तर :– (1) शासन और समाज की व्यवस्था अलग–अलग होगी। शासन लूट मार छीन झपटी से एकत्रित सम्पत्ति पर कठोर नियंत्रण करेगा क्योंकि ये सब अपराध हैं। किन्तु ईमानदारी से कमाई हुई सम्पत्ति पर कोई प्रत्यक्ष कानूनी सीमा नहीं होगी। कानून आर्थिक असमानता पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण के लिये संपत्ति पर कर लगाकर तथा कृत्रिम उर्जा पर कर लगाकर अपने पांच विभागों का खर्च पूरा करेगा। शेष बचा धन प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से बाट दिया जायेगा। सम्पत्ति की सीमा शासन द्वारा नहीं लगाई जायगी किन्तु समाज व्यवस्था अर्थात ग्राम सभा, जिला सभा, प्रदेश सभा और केन्द्र सभा ऐसी सीमा लगाने के लिये स्वतंत्र होगी।

2. श्रम मूल्य वृद्धि के लिये श्रम की मांग बढ़ाने के उपाय करने होगे। श्रम मूल्य वृद्धि के लिये तीन उपाय करने आवश्यक है 1. कृत्रिम उर्जा में भारी मल्य वृद्धि 2. शासकीय श्रम मूल्य घोषणा की समाप्ति 3. बेरोजगारी से शिक्षित और अशिक्षित का भेदभाव समाप्त करके बेरोजगारी की भिन्न परिभाषा स्थापित करना– न्यूनतम घोषित श्रम मूल्य पर योग्यतानुसार काम का अभाव। 3. शिक्षा पद्धति या शिक्षा का माध्यम कानून या सरकार तय नहों करेगी। यह समाज व्यवस्था का विषय होगा। ग्राम सभा, जिला सभा, प्रदेश सभा, और केन्द्र सभा शिक्षा संबंधी सभी निर्णय करेंगे। 4.शासन व्यवस्था में चुनावों में बहुमत प्रणाली स्वीकार होगी जो कुछ वैध पड़े मतों के आधे से अधिक हो। समाज व्यवस्था मे जो निर्णय व्यक्ति या परिवार के अधिकार क्षेत्र के हों उसमे तो ग्राम सभा सर्व सम्मति से ही निर्णय करेगी। अन्य मुद्दों पर वह अपने नियम बना सकती है। कानून में मनाव का काई अस्तित्व नहीं है। समाज व्यवस्था में मनाव हो सकता है। 5. न्यायालय वर्तमान कानूनी व्यवस्था की तरह ही स्ववंत्र होंगे। न्यायालय के निर्णय बाध्यकारी होंगे। ग्राम सभा, जिला सभा, प्रदेश सभा आर केन्द्र सभा भी न्याय प्रणाली शुरू करके न्याय कर सकते हैं किन्तु समाज का निर्णय व्यक्ति मानने के लिये बाध्य नहीं होगा। सामाजिक न्यायालय किसी व्यक्ति को उसकी सहमति के बिना दण्डित नहीं कर सकते।

6. धन, धरती और संग्रह के स्वामित्व की सीमाएँ समाज की इकाइयां तय करेंगी, शासन नहीं। हम जो संविधान बना रहे हैं वह शासन के अधिकार दायित्व तथा हस्तक्षेप को अधिकतम सीमाएँ तय करने का दस्तावेज मात्र है। समाज व्यवस्था कैसी होगी वह समाज की स्वतंत्रता होगी। समाज व्यवस्था का विचार बाद में होगा।

7. गरीब और बेरोजगारी दूर होगी श्रम की मूल्य वृद्धि से श्रम मूल्य वृद्धि होगी श्रम की मांग बढ़ने से। भ्रष्टाचार दूर होगा अनावश्यक कानूनों की समाप्ति से। मै चोरी, डकैती, मिलावट, जालसाजी, धोखाधड़ी , बलात्कार, हिंसा और आतंक की अपेक्षा भ्रष्टाचार को भिन्न समझता रहा हूँ। अपराध समाज व्यवस्था पर आक्रमण हैं। उन्हें हर हाल म रोका जाना चाहिये। किन्तु भ्रष्टाचार शासकीय व्यवस्था के विरूद्ध है। उसका गुण दोष के आधार पर ही विरोध किया जा सकता है। मैं भ्रष्टाचार का समर्थक नहीं जैसा आपने लिख दिया है किन्तु मैं भ्रष्टाचार का वैसा विरोधी भी नहीं जैसे आप है। मेरे विचार में शासन व्यवस्था और समाज व्यवस्था पृथक–पृथक हैं। शासन व्यवस्था समाज व्यवस्था की पोषक हों, समानान्तर नहीं। किन्तु यदि काई शासन व्यवस्था न समाज व्यवस्था की पोषक हो, न ही समानान्तर, बल्कि वह तो पूरी तरह समाज व्यवस्था को गुलाम बनाकर स्वयं मालिक बन बैठे ऐसी व्यवस्था के आदेशों का मैं ऑख बंद करके पालन नहीं करूॅगा। कोई ऐसे शासकीय आदेशों को अप्रत्यक्ष असफल करेगा तो मैं शासन के पक्ष में खड़ा होकर समाज के साथ गद्दारी नहीं करूंगा। यदि अपना कोई साथी समाज और शासन के बीच टकराव में शासन का साथ देता है तो मुझे उसके संबंध में कुछ नहीं कहना है किन्तु मैं ऐसे मामले में तटस्थ रहूॅगा। ऐसे ईमानदार और चरित्रवान लोग अपने आचरण के कारण तो श्रद्धा के पात्र हैं किन्तु ये लोग अपने आचरण के समक्ष दूसरों की ऐसी आलोचना करते हैं कि इनका चरित्र सामाजिक एकता में बाधक बन जाता है। इनकी संख्या यथार्थ में तो लाखों में एक से भी कम ही है। बाकी तो ईमानदारी का ढोंग मात्र करते हैं। हम लोगों ने समाज व्यवस्था को मजबूत करने के लिये शासन व्यवस्था के पंख कतरने के युद्ध की तैयारी शुरू कर दी है। अब युद्ध काल में चरित्रवानों का चाहिये कि वे अपने चरित्र की तुलना समाज के अन्य सामान्य जनों से करके न हममें फुट डालें न ही हमारा मनोबल तोडें अन्यथा यदि युद्धभूमि में भी युधिष्ठिर सत्य का राग अलापते रहे तो ऐसे लोगों के आलाप को मूर्खालाप मानकर हम आगे की रणनीति बनायेगें। हम एक सत्यग्रह शुरू करने जा रहे है। इस सत्याग्रह में राजनेताओं, अपराधियों, और कुछ पूॅजीपतियों का ध्रुवीकरण संभव है। शेष सम्पूर्ण समाज ध्रुवीकरण के लिये अपने चरित्र के अहंकार से यदि हम नही बचेगे तो सामाजिक एकता में बड़ी बाधा उत्पन्न होगी।

## 7. श्री के. के. सोमानी, बम्बई

मैने आपको दो पत्र लिखें है। उत्तर आना बाकी है। आपने संक्षिप्त संविधान का जो प्रारूप बनाया है उसकी एक प्रति भेजने की कृपा करे।

मैने लिखा है कि हिन्दुत्व कोई विशेष पूजा पद्धति का नाम भी नहीं है और विशेष मान्यता का भी नहीं। हिन्दुत्व तो जीवन पद्धति का नाम है जिसमें किसी भी पद्धति से पूजा करने वाला हो सकता है। यहॉ तक कि पूजा न करने वाला भी। महात्मा गांधी ने भी जिस हिन्दत्व पर गर्व किया था उसकी परिभाषा ऐसी ही थी। कुरान और बाइबिल ने अपने अनुयायियों को जो शिक्षा दी है वह कई मामलों में हिन्दुत्व से भिन्न होकर वैसी ही एकांगी है जैसी हिन्दुओं के बीच के कई सम्प्रदायों ने दी है। पिछले कुछ वर्षा से इसाई विचारधारा में सुधार के लक्षण भी दिखे हैं। हो सकता है कि इसाइयों की सुधारवादी सोच का प्रभाव इस्लाम पर भी पड़े।

उत्तर :– आपका एक पत्र पहलें छपा है और दूसरा यह है। दोनो के भावार्थ एक दूसरे के विपरीत हैं। विस्तार और सुरक्षा बिल्कुल भिन्न–भिन्न परिस्थितिया हुआ करती है। दोनो का स्वरूप हमेशा ही अलग–अलग होता है। विस्तार में सिद्धांन्त प्रमुख होता है, व्यावहारिकता गौण। सुरक्षा में व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रमुख होता है और सिद्धान्त गौण। महात्मा गांधी हिन्दुत्व के सिद्धान्तों का सर्वोच्च महत्व देते थे और संघ सुरक्षा को महत्वपूर्ण मानते हुए व्यावहारिक नीतियों पर जोर देता है। गांधी हिन्दुत्व की प्रचीन चकाचौंध से प्रभवित होकर उसकी वर्तमान स्थिति के साथ तालमेल नहीं बिठा पाये और संघ इस्लाम की सफलता से प्रभावित होकर अपने मूल आदर्शो को ही छोड़ने में लग गया। आपका पिछला पत्र संघ विचारधारा का पोषक था और नया पत्र गांधी विचारों का पोषक है।

मेरे विचार में आज हिन्दुत्व को गांधी की विस्तार नीति की अपेक्षा संघ की सुरक्षात्मक नीति की अधिक आवश्यकता है किन्तु उसे सुरक्षा क निमित्त हिन्दुत्व के इस्लामीकरण की आवश्यकता नहीं है। इसाइयत धन बल से अपना विस्तार कर रही है। अंग्रेजों ने भी भारत पर अपना राजनैतिक शिकंजा व्यापार के माध्यम से ही मजबूत किया था। इस्लाम ने भारत पर अपना राजनैतिक शिकंजा भी आतंक के बल पर कसा था और आज भी अपनी चिर परिचित प्रणाली (आतंक) से दूर नहीं हो रहे हैं। हम इस्लामी आतंक का मुकाबला गांधीवादी तरीके से नहीं कर सकते यह सच है किन्तु यह भी सच है कि हिन्दुओं में आतंकवादी विचार कभी नहीं भर सकते। इसलिये बीच का मार्ग ही उपयुक्त है कि हम कानूनों में तीन बदलाव लाकर इस्लाम की विस्तार नीति पर रोक लगावें। 1. समान नागरिक संहिता। 2. धर्म परिवर्तन कराने के प्रत्यक्ष प्रयासों पर रोक।

3. व्यक्ति एक इकाई। अल्पसंख्यक बहुसंख्यक की अवधारणा की समाप्ति। संघ समझता है कि उसे आक्रमण और विघटनकारी नीतियों के कारण ही आंशिक सफलता मिली है। यह बात सच भी है। किन्तु यदि संघ मंदिर मुद्दे को न उठाकर उपरोक्त तीन मुद्दो पर डटा रहता और भजपा भजपा की रट नहीं लगाता तो धीरे–धीरे अधिक मजबूत हो जाता। गांधी का हिन्दुत्व और संघ के हिन्दुत्व के बीच ही हमें हिन्दुत्व की नई परिभाषा बनानी होगी जो हिन्दुत्व को सुरक्षा तो दे किन्तु उसे उसकी मूल अवधारणा से दूर न करें।

## 8. श्री पंकज, हरहुआ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

जबसे ज्ञानतत्व पढ़ना शुरू किया तबसे एक बात मन में खटकती रहती है कि ऐसी अच्छी पत्रिका से इतने बाद क्यों जुड़ा। यदि मैं पूर्व में ही ज्ञान तत्व से जुड़ा होता तो अधिक अच्छा होता। फिर भी कार्यालय से पुराने अंको को ले लेकर पढ़ने से कुछ क्षति पूर्ति हुई है।

ज्ञानतत्व एक सौ चार में समानता और स्वतंत्रता को मिलाकर एक बेमिसाल परिभाषा बनाई गई है। अन्य लेख भी सारगर्भित हैं। किन्तु ज्ञान तत्व में भाषा की त्रुटियॉ निरंतर बढती जा रही हैं। इस पर भी विचार आवश्यक हैं। मेरा यह भी विचार है कि साम्यवाद और साम्यवादियों पर विस्तृत समीक्षात्मक विचार ज्ञान तत्व में आवें।

उत्तरः– ज्ञान तत्व में विचार और भाषा मेरी अपनी है। मैं रामानुजगंज में पहाड़ी के किनारे बैठकर लिखता था और वहीं छपता भी था। धीरे–धीर मेरी व्यस्तता बढ़ती गई। मेरा ज्यादा समय दिल्ली में बीतने लगा। लिखाई दिल्ली में और छपाई रामानुजगंज में होने से मेरा नियंत्रण कम हा गया। दिल्ली में कम्प्यूटर जिस फौंट में सी .डी बनाता है वह मशीन में छपते समय बदल जाता है। यह बीमारी समझ में नही आ पाती है कि इसका समाधान कैसे करें। अंक एक सौ चार में सब जगह श के स्थान भा हो गया जो पूरी तरह मशीनी दोष था। सी .डी मे श ही था। फिर भी हम लोग इस कमी को सुधारने की कोशिश कर रहे है। साम्यवाद पर विस्तृत समीक्षा का प्रयास करेंगे।

## 9. श्री के. के. सोमानी बम्बई, महाराष्ट

संविधान बिल्कुल छोटा होना चाहिये। इंग्लैंड जैसे देश में तो लिखित संविधान ही नहीं है। परंपराऍ ही नियंत्रण करती हैं। फिर भी संविधान में कुछ मूल भूत बातें ही लिखी होनी चाहिये, विस्तार नही। सरकार का निर्माण, चनाव पद्धति, राष्टपति, प्रधानमंत्री पंचायत आदि के अधिकार संविधान में लिखे जायें। संविधान में व्यक्ति के मूल भूत अधिकार और कर्तव्यों का भी समावेश हो। इससे ज्यादा संविधान की आवश्यकता नही है।

उत्तरः– लोकतंत्र में सविधान की आवश्यकता और परिभाषा को कभी ठीक से समझा नही गया। पश्चिम के लोकतांत्रिक देशों ने भी संविधान की स्पष्ट परिभाषा नही दी। भारत जैसे देशों ने तो संविधान की परिभाषा को कभी समझा ही नहीं। मैं संविधान और उसकी परिभाषा पर कई बार विचार करता हूँ तो पाता हूँ कि शासन के अधिकतम तथा व्यक्ति और समाज के न्यूनतम अधिकारों
की सीमाएँ स्पष्ट करने वाला दस्तावेज सविधान है। संविधान और कानून बिलकुल भिन्न–भिन्न अर्थो वाले दस्तावेज होने चाहिये। संविधान शासन के अधिकतम और व्यक्ति के न्यूनतम अधिकार स्थापित करता है जबकि कानून शासन के न्यूनतम और व्यक्ति के अधिकतम अधिकार स्पष्ट करता है। संविधान शासन के कर्तव्य निश्चित करता है और कानून व्यक्ति के कर्तव्य निश्चित करता है। संविधान समाज द्वारा बनाया गया दस्तावेज होता है और कानून शासन द्वारा बनाया गया दस्तावेज। कल्पना की गई थी कि संसद समाज और शासन के बीच मध्यस्थ की भूमिका में रहेगी किन्तु संसद कों ही मंत्रिमंडल बनाकर सरकार चलाने का अधिकार मिल जाने से संसद समाज के प्रतिनिधित्व से दूर होने लगी और वर्तमान समय में तो संसद पूरी तरह राजनेताओं के परिवार के स्वरूप तक सिमट कर रह गई है। ससद को ही संविधान संशोधन का अधिकार मिल जाना तो और बड़ी भूल हो गई। इसके बाद तो समाज का राजनीति पर कोई अंकुश रहा ही नहीं क्योंकि राजनीति ने संसद को अपने कब्जे में कर लिया और सविधान संसद के कब्जे में था ही। हमारे देश के राजनेताओं ने इस सोमा तक गलती की कि उन्होने व्यक्ति के कर्तव्यों का एक नया अध्याय संविधान में जोड़ दिया और दुर्भाग्य यह है कि हम आप भी व्यक्ति के कर्तव्य संविधान में सम्मिलित करने की चर्चा करते है।

मैं आपसे सहमत हूँ कि संविधान छोटा हो। किन्तु साथ ही यह भी आवश्यक है कि सविधान के निर्माण में समाज शास्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका हो और राजनीति शास्त्र की कम। संविधान निर्माण और संविधान संशोधनो पर नियंत्रण हेतु एक ऐसी संविधान सभा बने जिसमें राजनेताओं के प्रवेश और आधिपत्य का खतरा न्यूनतम हो वैसे तो राजनीति से समाज का प्रत्येक क्षेत्र प्रदूषित हो रहा है किन्तु यदि हमने संविधान सभा को बचा लिया तो अनेक अन्य क्षेत्र भी मुक्त होने का प्रयास करते दिखेंगे। संविधान सभा को न्यायपालिका और चुनाव आयोग से भी अधिक स्वतंत्र होना चाहिये। मैने तो सोचा था कि पूर्व राष्टपति, पूव सर्वोच्च न्यायाधीश, पूर्व चुनाव आयुक्त तथा डिग्री  कालेजों के कुछ प्राचार्य जिन्हें डिग्री कालेज के प्रोफेसर मतदान से चुने ऐसी संविधान सभा बने तो राजनीति के कीटाणुओं से कुछ मुक्त रह सकती है। यदि यह सुझाव भी ठीक न हो तो और किसी नये सुझाव का मैं स्वागत करूगा किन्तु इस सुझाव की कमियॉ निकालकर नया सुझाव न दे पाने को मैं समझूंगा कि आपने दायित्व पूरा नहीं किया है। आशा है कि आप सबकी टिप्पणी मिलेगी और तदनुसार इस विसय पर चर्चा बढ़ेगी।

## 10. श्री जी .पी .गुप्ता नजरबाग, छतरपुर, मध्य प्रदेश– 471001

ज्ञानतत्व मिलता रहता है। प्रत्येक ज्ञानतत्व कुछ नये राजनैतिक रहस्यों पर से पर्दा उठाता है। इसलिये नया ज्ञानतत्व पढ़ने की भूख बनी रहती है। मैं अस्वस्थता के कारण आपके कार्य में शारीरिक सहयोग नहीं दे पा रहा। फिर भी ज्ञानतत्व का आजीवन सदस्यता शुल्क पांच सौ रूपये भेज रहा हूँ। आपने भारत में साइकिल पर ढ़ाई सौ से चार सौ रूपये प्रति साइकिल का टैक्स लगने के पर्दे में रहने वाले श्रम शोषक रहस्य पर से पर्दा उठाकर स्वयं को गांधी का विकल्प प्रमाणित कर दिया है। मुझे तो ऐसा लगता है कि ऐसा लगता है कि ऐसे अनेक प्रकरण होंगें जिनमें प्रत्यक्ष रूप से श्रम सहायक दिखने वाली सरकार पर्दे के पीछे श्रम शोषण का शड़यंत्र करती रहती है। मेरी इच्छा है कि ऐसे राजनैतिक भाड़यंत्र पर सम्पूर्ण समाज में व्यापक बहस छिड़े। गायत्री परिवार इस महान प्रयत्न में सहायक हो सकता है।

उत्तर :– आपका शुल्क प्राप्त हो गया है। आपका पत्र उत्साह वर्धक है। वर्तमान राजनैतिक चरित्र और उससे मुक्ति के हमारे प्रयत्नों ने जब आप जैसे शारीरिक अस्वस्थ व्यक्ति के मन में इतनी आशा का संचार किया है तो सफलता अवश्य मिलेंगी। मुझे आशा है कि गायत्री परिवार भी इस दिशा में अपने कर्तव्य के प्रति सचेष्ट होगा।

साइकिल टक्स अकेला ऐसा टैक्स नहीं है। भारत में सरसों तेल पर पांच से आठ रूपया प्रति लीटर का टैक्स लगता है। ऐसा नही है कि यह टैक्स साधारण सरसों तेल पर न लगकर सिर्फ डब्बाबंद या विशेष किस्म के सरसों तेल पर ही लगता हो। सच्चाई यह है कि यह तेल सब प्रकार के सरसों तेल पर लगता है। उत्पादन कर, मंडी कर, वाणिज्य कर, केन्द्रीय बिक्रो और अन्त में कर पर भी कर लगता है। पेटोल पर पचास पैसा मूल्यवृद्धि के खिलाफ आंदोलन करने वाले भाजपाई या साम्यवादी भी इस कर के विरूद्ध कभी आवाज नही उठाते। मैं आपसे सहमत हूँ कि ऐस अनेक रहस्यपूर्ण उदाहरण है जो समाज के विरूद्ध शड्यंत्र पूर्ण कर प्रणाली के रूप में चल रहे हैं। आप आश्वस्त रहिये कि हमने जो अभियान छेड़ा है उसके अच्छे परिणाम अवश्य होंगे।

## 11 श्री बच्छराज खटेर–कलकत्ता, बंगाल

ज्ञान तत्व का 103 और 104 अंक मिले। अंक 104 में आपने पृष्ठ 5 पर लिखा है कि सर्वोदय वालां ने ग्यारह सूत्री आंदोलन की घोषणा की है। यह घोषणा किस पेज में छपी है। क्या आप मुझे भेज सकते है। या लिख सकते है।

इसी 104 अंक के पृष्ट 26 पर आपने लिखा है कि मैंने स्वयं को पढ़ना शुरू किया। मै संतुष्ट हूँ यदि आपके अपने विचार हो तो उन्हे अवश्य पढूँगा। आपका विचार मुझे बहुत ही प्रेरक एवं सटीक लगा। हममें स्वतंत्र विचार और स्वयं निर्णय करने की शक्ति बहुत ही थोड़े लोगो में ही दखने को मिलती है। अधिकांश तो दूसरो के विचारो के उदाहरण देने मे ही अपनी विद्वता समझते है। उदाहरणों की तो कोई कमी नही है। लेकिन हम अपने जीवन व्यवहार से ऐसा कौन सा मौलिक उदाहरण पेश कर सकते है कि हमने अमुक महापुरूष के सनातन सत्यों को आत्मसात कर लिया है। हम दूसरो के वचनों का पुनः उच्चार करने वालों के खोखला गामोफोल बनकर ही संतुष्ट हो जाते है। अगर हमने किसी महापुरूष के विचार सचमुच आत्मसात कर लिये हैं तो हमें उनको अपनी भाषा में अपने ढ़ंग से प्रकट कर सकना चाहिए। अगर हमें यह विश्वास हो गया है कि पृथ्वी गोल है तो फिर उसे प्रमाणित करने के लिए भूगोल की किसी अच्छी पुस्तक का उदाहरण देने की क्या आवश्यकता है। जो अपनी बात के समर्थन में दूसरो के वचनों का आश्रय लेता है, उसे अपने आप पर, अपने विचारों पर, अपनी बुद्धि पर विश्वास नही है। हमें स्वतंत्र चिंतन, सत्य शोधक और स्वतंत्र निर्णय करने की कला सीख लेनी चाहिए।

अंक 103 में आपने हिंसा कितनी सामाजिक कितनी शासकीय शीर्सक से जो लख लिखा है उसका थोड़ा विश्लेषण कर रहा हूँ। आपने लिखा है कि सामाजिक हिंसा का नियंत्रित करने के लिये संतुलित शासकीय हिंसा आवश्यक है। आज भारत में सामाजिक हिंसा में जो वृद्धि हुई है या हो रही है, उसका सवाधिक दास इन सर्वोदय वालों के खातें में जाता है। आज सर्वोदय में एक भी ऐसा व्यक्ति नही जो अपने आत्म बल से किसी हिंसा को रोक सकें। किन्तु ये गांधी का नाम लेकर सरकारी हिंसा को अवश्य ही प्रभवित करते रहते है।

हिंसा फिर वह चाहे व्यक्ति करे या समाज करे या शासन करे उसके उचित परिमाण का निर्णय कौन करेगा? कैसे करेगा? सामाजिक हिंसा और शासकीय हिंसा में संतुलन, उसका औचित्य और अनौचित्य तय करने की कसौटी क्या होगी? उसका न्यायाधीश कौन बनेगा? अक्सर देखा जाता है कि छोटी हिंसा को दबाने के लिये बड़ी हिंसा की जाती है। लाठी का जवाब बंदूक से दिया जाता है। छोटी हिंसा के मुकाबले बड़ी की विजय होती है इसलिये हिंसा में संतुलन खोजना बालू में तेंल खोजने जैसा व्यर्थ प्रयास लगता है। सवाल यह है कि सामाजिक हिंसा और शासकीय हिंसा मे न्यायोचित

संतुलन हा। सवाल यह है कि हिंसा का शमन हिंसा से न किया जाय क्योंकि हिंसा से प्रति हिंसा पैदा होती है अतः हमें हिंसा अन्याय और अत्याचार का मुकाबला करने के लिये हिंसा की विरोधो शक्ति व अहिंसा के तरीकों की खोज करनी चाहियें। यह तो निर्विवाद सत्य है कि मनु" य के मन में जैसा कि तुलसीदास जी ने कहा है सुमति कुमति सबके उर रहहींटी, नाथ पुराण निगम अस कहही। जहॉ सुमति वहा सम्मति नाना, जहां कुमति वहां विपत्ति निदाना इसलिये हिंसा तो रहेगी–फिर उसे चाहे समाज प्रकट करे या शासन। पुलिस और सेना तो सतयुग म भी रहेगी। और उसका प्रयोग शासक लोग मनमाना ही करेंगे। समाज में भी किसी अन्याय का प्रतिकार हिंसक साधनों से करने की जो परम्परा चल रही है, हमें उन हिंसक तारीकों की जगह अहिंसक तारीकों की खोज एवं उनकी प्रतिष्ठात्मा करने का प्रयास करना चाहिये। अगर हम अहिंसक तरीके न जानते हो या अहिंसा में हमारा विश्वास न हो तो हमें कायर की तरह डर कर भागने की अपेक्षा हिंसा का मुकाबला हिंसा से करना चाहियें।

आपका यह कहना सही है कि आज सर्वोदय में एक भी ऐसा व्यक्ति नही है जो आत्म बल से पशुबल का मुकाबला कर सकें इसका कारण यह है कि सर्वोदय वालो ने सत्य की स्वतंत्र खोज नही की। सत्य की स्वतंत्र खोज किये बिना आत्मबल को प्रकट करने का तरीका कैसे खोजा जायेगा। गांधी जी द्वारा किये गये सत्याग्रह शब्द का उच्चारण बारबार करने वालें सर्वोदयी लोग भी ने एक बार भी आत्मबल का भली प्रकार प्रदर्शन करके किसी समस्या का समाधान नही दिखा सकें। आपको मालूम होगा कि जल विरादरी ने जल के व्यावसायीकरण के विरोध में सत्याग्रह करके उसे रोकने का प्रण लिया है। अब यह प्रण कब पूरा होगा। शायद कभी भी नही हो तो आश्चर्य नही है। क्योंकि जो अहिंसक योद्धा होता है जों सत्याग्रह की लडाइ लड़ने का तरीका जानता है उसे वर्षा पहले प्रण लेने की क्या जरूरत हैं जिन्हे सत्याग्रह की स्वयं समझ नही हैं वे गाधी के सत्याग्रह की बार बार घोषणा भरते हैं एक बार भी सत्याग्रह का प्रकट प्रदर्शन करते उसकी शक्ति से अन्याय का प्रतिकार करकें नही दिखाते तब दुनिया का उनके सत्याग्रह पर कैसे विश्वास होगा।

आशा है कि आप मेरे विचारों के दोष ढुंढ़कर मुझे बताने का कष्ट अवश्य करेंगें।

**उत्तर** :– आपने सर्वोदय आंदोलन के ग्यारह सूत्रों की प्रति मांगी है। मैं प्रयत्न करूॅगा। ये सूत्र मुझे बंग जी ने नवंबर पांच में दिखायें थें। सर्वोदय की किसी पत्रिका में भी छपें हैं। वैसे ये सूत्र राजगोपाल जी ने बनाये थें जिन्हें सर्वोदय ने स्वीकार करके अक्टबर छः में आंदोलनों की घोषणा की है। मैं अच्छी तरह जानता हूॅ कि सर्वोदय ऐसें आंदोलनों द्वारा स्वयं के जीवित रहने का प्रमाण ही देता है, काई निर्णायक और योजनाबद्ध संघष चिंतन और कार्यान्वयन का अभाव है। आपने भी उनके पानी आंदोलन का संभावित परिणाम निकाला ही है। मैने भी त्रिसूत्रीय संविधान संशोधन अभियान के प्रस्ताव की मृत्यु पूर्व आजीवन मूर्छा से यही अर्थ निकाला है।

मैने संतुलित हिंसा का पक्ष लिया था। आपने संतुलन की प्रक्रिया के संकट की बात हैं। दोनो ही पक्ष महत्वपूर्ण है। हिंसा दो प्रकार की है। 1 व्यक्तिगत या सामाजिक हिंसा 2 सरकारी हिंसा। जब कोई व्यक्ति स्वयं ही हिंसा की आवश्यकता, मात्रा का निर्णय और कार्यान्वयन का कार्य करता है तो उसे व्यक्तिगत हिंसा कहते हैं। यही कार्य जब शासन से भिन्न कोई सामाजिक इकाई करें ता वह सामाजिक हिंसा है और जब शासन यह काम करे तो शासकीय हिंसा है। शासकीय हिंसा यदि आवश्यकता से अधिक होगी तो व्यक्तिगत या सामाजिक हिंसा कम होगी और यदि शासकीय हिंसा आवश्यकता से कम होगी तो व्यक्तिगत या सामाजिक हिंसा बढ़ेगी। आपका मुख्य प्रश्न है कि संतुलित हिंसा किसे माना जाय तथा शासन के संतुलन की मात्रा कौन तय करेंगा। आपका प्रश्न बहुत जटिल और महत्वपूर्ण है।

तानाशाही में तो ऐसे संतुलन पर नियंत्रण का कोई मार्ग नहीं है किन्तु लोकतंत्र में तो ऐसा मार्ग उपलब्ध है। हिंसा की मात्रा न्यायालय घोषित करता है। इस मात्रा का कार्यान्वयन पुलिस करती है। हिंसा की मात्रा का सैद्धान्तिक स्वरूप संसद तय करती है और संसद पर समाज का नियंत्रण रहेगा जो अभी नहीं है। शासकीय हिंसा की मात्रा आवश्यकता से कम होना समाज के लिये अधिक खतरनाक है क्योंकि इससे व्यक्तिगत या सामाजिक हिंसा को प्रोत्साहन मिलता है। शासकीय हिंसा का अधिक होना भी उचित नही, किन्तु शासकीय हिंसा अधिक होने की अपेक्षा कम होने से नुकसान कई गुना अधिक होता है। भारत वर्तमान समय में जिस व्यक्तित्व आर सामाजिक हिंसा के दौर से गुजर रहा है उसका एक मात्र कारण शासकीय हिंसा का बहुत कम होना ही है।

आप यह तो मानते हैं कि पुलिस और सेना रहेगी, तो उसका काम क्या होगा? मेरे विचार में उसका काम होगा सुरक्षा। जो लोग समाज से नियंत्रित नही होंगे उन्हे बल प्रयोग से नियंत्रित किया जायेगा। अपराध नियंत्रण हमारा लक्ष्य होगा। हृदय परिवर्तन या बल प्रयोंग मार्ग हृदय परिवर्तन के अधिक प्रयास होने चाहिये। किन्तु हृदय परिवर्तन के अधिक प्रयास होने चाहियें। किन्तु हृदय परिवर्तन की परीक्षा में बल प्रयोग नही रूकेगा, क्योकि लक्ष्य को खतरे में नही डाला जा सकता।

मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूॅ कि हिंसा का शमन अहिंसा से किया जाय। गांधी जी ने यही किया था। मैं भी इसका पक्षधर हूॅ। मैने अपने शहर में अनेक हिंसक घटनाओं का शमन अहिंसक तरीके से किया है। मैं अपने साथियों को समझाता हूॅ कि व स्वयं को इतना मजबूत करे कि उनकी अहिंसा पुलिस की हिंसा से अधिक मजबूत हो। मैंने पहले अहिंसा को मजबूत किया और उसके बाद हिंसा को रोका। मैं अब दिल्ली म हूॅ। जब तक मैं अपनी अहिंसक शक्ति नही बढ़ा लेता तब तक दिल्ली में शासकीय हिंसा का विरोध नही करूॅगा। मुझे दुःख है कि जो लोग गांधी तों क्या, बजरंगलाल तक नहीं बन पाये, जो अपने मुहल्ले के अपराध नियंत्रण में अपने चरित्र बल का अहिंसक प्रभाव दिखानें की क्षमता नहीं रखते वे सारे देश में सेना और पुलिस की आलोचना करते हैं। अपनी क्षमता को तौलकर सिद्धांत बताना उचित होगा। करनी शून्य और कथनी बड़ी–बड़ी की अपेक्षा करनी के बाद कथनी का अधिक महत्व अधिक है। मैं चाहता हू कि अहिंसक मार्ग खोजने की प्रक्रिया जारी रहे और तब तक वर्तमान अव्यवस्था के विरूद्ध शासकीय बल प्रयोग वृद्धि का समर्थन भी कर दिया जाय। अंत में मेरा आपसे निवेदन है कि हम सब समाज में बढ़ रही हिंसा की मनोवृति के लिये अपनी नासमझी भरी अहिंसा कें प्रचार को कारण रूप में स्वीकार करें और भविस्य में इस मुद्दे पर गभीर विचार मंथन करके कोई निष्कर्ष निकाले।

## 12. श्री रामनरेश कुशवाहा, रायबरेली, उत्तर प्रदेश

हैदराबाद मुस्लिम आतंकवादियों का गढ़ बनता जा रहा है। पिछले वष में गुजरात पुलिस ने एक मुस्लिम धर्मगुरू/आतंकवादी को हैदराबाद से गिरफतार किया था ता वहां भारी विरोध प्रदर्शन हुये थें। कई मानवधिकार प्रेमियो ने भी इस पर खूब हल्ला मचाया था। जब गुजरात पुलिस ने इशरत जहा को गोलीमारी थी तब भी ऐसी ही प्रतिक्रिया हुई। ब्रिटेन में सिर्फ दो घटनाऍ होते ही वहॉ के आम मुसलमानों को संदेह से देखा जाने लगा। मुसमानों के विरूद्ध सरकार ने भी सतर्कता बढ़ाई जिसके परिणाम स्वरूप मुसलमानों को भी चिंता हुई और उन्होने अपनी छवि सुधारनी शुरू कर दी। वहॉ के धर्मगुरूओं ने आतंकवाद और कट्टरवाद कें विरूद्ध बोलने की शुरूआत कर दी। भारत में अनगिनत आतंकवादी घटनाओं के बाद भी मुसलमानों को न संदेह से देखा गया और न ही सतर्कता बढ़ाई गई। परिणाम स्वरूप भारत का मुसलमान ऐसे तत्वों को हीरो समझता है। मानवाधिकार संगठन भी उन्हीं की भाषा बोलने लगतें है। ऐसा क्यों?

उत्तरः– ब्रिटेन और भारत की तुलना करते समय हमें इस बात पर भी सोचना होगा कि ब्रिटेन में मुसलमान बाहर से आये हुए होने से उतना उॅचा मनोबल नहीं जितना भारत के मुसलमानों का यहॉ के मूल निवासी होने के कारण है। मानवाधिकार संगठनों क नाम पर तो एक पूरा का पूरा व्यवसाय ही चल रहा है। इनमें अनक अपाराधिक पृष्ठभूमि के लोगो का भी समावेश हो सकता है। ये लोग मुस्लिम आतंकवादियो का ही समर्थन करें ऐसी बात नहीं

है। ये तो नक्सलवादी हिंसा का भी समर्थन कर देते हैं और सामाजिक हिंसा का भी। मानवाधिकार संगठनों को न्याय अन्याय या व्यवस्था अव्यवस्था से कुछ लेना देना नही है। शासन व्यवस्था के विरूद्ध आवाज उठाना इनका एकमात्र काम है चाहे वह उचित हो या अनुचित। फिर भी इस्लाममिक हिंसा के प्रति ये खास मेहरबान होते हैं।

भारत के अन्य लोगों में ब्रिटेन सरीखी गंभीर प्रतिक्रिया न होने का कारण है संघ। मेरी भारत के सब तरह के राजनीतिज्ञों से चर्चा होती है। साम्यवादी लोग तो व्यक्तिगत बातचीत में भी मुसलमाना के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं किन्तु कांग्रेस का नब्बे प्रतिशत हिन्दू व्यक्तिगत बातचीत में आम मुसलमानों के प्रति बहुत संदेह और विराध भाव रखता है किन्तु प्रत्यक्ष रूप में उनका समर्थन उसकी राजनैतिक मजबूरी है भारत की सम्पूर्ण राजनीति दो भागों में बॅट गइ हैं 1. संघ समर्थक 2. संघ विराध। संघ विरोधियों के लिये इस्लामिक आतंकवाद एक दीर्घकालीन समस्या है जिसका दूरगामी प्रभाव है और राष्टोय समस्या है। किन्तु संघ उनका तात्कालिक विरोधी है, जो संघ विरोधियों का पहला शत्रु होने से वे इस्लाम के प्रति स्वाभाविका प्रतिक्रिया से बचते है। संघ जिस तरह मुसलमानों के विरूद्ध हल्ला मचानें में जल्दी करता है उससे ध्रुवीकरण तो तेज होता है अर्थात कुछ संघ समर्थकों की संख्या बढ़ती है किन्तु उसी गति से संघ विरोधियों की संख्या भी बढ़ जाती है। जब तक संघ अपनी धर्म और राजनीति के घालमेल की नीति पर चलता रहेगा तब तक इस्लामिक आतंकवाद के विरूद्ध वास्तविक प्रतिक्रिया का अभाव ही रहेगा।

## 13. श्री रामचन्द्र बाजपेयी, कलकत्ता? पश्चिम बंगाल

आपने छः जनवरी को फांसी की सजा और विकल्प विषय पर मेवाड़ इन्स्टीट्यूट गाजियाबाद में अपन गंभीर विचार प्रस्तुत किये। आपने यह भी बताया कि उक्त विचार शीघ्र ही ज्ञान तत्व में भी जायेगा। वहॉ बहुत लम्बा प्रश्नात्तर भी हुआ। मैं आपसे यह जानना चाहता हूॅ कि भारत के अधिकांश लोग अपराधों में होने वाली सजा को और मानवीय बनाने के पक्ष में क्यों ह? आपके विचार में उनकी नीतियॉ गलत हैं या नीयत।

उत्तरः– आपका यह मानना भ्रम पूर्ण है कि भारत का आम नागरिक अपराधों में होने वाली सजा को और अधिक मानवीय करने के पक्ष में है। सच्चाई यह है कि भारत में निन्यानबे प्रतिशत सामान्य लोग अपराधों के लिये होने वाले दण्ड को कठोर करने के पक्ष में हैं। सिर्फ भारत के असामान्य लोग जिनकी संख्या तो सिर्फ एक प्रतिशत ही होगी लेकिन उनमें अधिकांश राजनीतिज्ञ, वकील, तथा सामाजिक कार्यकर्ता हैं जो सजा को मानवोय बनाने की पैरवी करते रहते है। ये लोग या तो विदेशी धन लेकर उससें संचालित संगठनों का प्रतिनिधित्व करते हैं या विदेशी शिक्षा के प्रभाव में निष्कष निकालते हैं। तभी तों छः जनवरी को मेवाड़ इन्स्टीट्यूट में आयेजित विचार गोष्ठी में उपस्थित नब्बे प्रतिशत लोगो ने फांसी की सजा का समर्थन किया। सत्तर प्रतिशत लोगों ने तो कुछ विशष मामलों में सार्वजनिक फांसी तक की मांग की। जब मैंने फांसी की सजा प्राप्त व्यक्ति को आंख निकलवा कर कुछ शर्तो तथा जमानत पर छोड़ने का विचार रखा तो अधिकांश श्रोताओं ने इसका यह कहकर विरोध किया कि इससे तो फांसी का भय बहुत कम हो जाएगा। मरे कई बार समझाने के बाद भी इस प्रस्ताव को बहुत कम समर्थन मिला। इस तरह यह सिद्ध हुआ कि भारत के आम लोग दण्ड को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के पक्ष में हैं, भले ही उसे कुछ अमानवीय ही क्यों न बनाना पड़े। दण्ड को मानवीय बनाने की वकालत करने वालों अधिकांश ता नासमझ हैं जिनकी नीयत खराब नहीं है। इक्के दुक्के लोग हो ऐसे हो सकते हैं जिनकी इस विषय पर नीयत खराब हो और जो जान बूझकर ऐसा करते हों।


**व्यवस्था परिवर्तन अभियान**

**एस–442, स्कूल ब्लाक, शकरपुर, दिल्ली–110092**

**फोन नं. –011– 55979826 / 22482393**


बारह और तेरह जनवरी को देश भर से आये पंद्रह प्रमुख प्रतिनिधियों की एक बैठक हुई। बैठक में झारखंड, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट व हरियाणा, हिमाचल, उत्तरांचल व दिल्ली, के प्रतिनिधियों के साथ कार्यालय प्रमुखों की विस्तृत चर्चा हुई। सर्व सम्मति से निम्न निष्कर्षा पर सहमति बनी।

1. देश की वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था के विरूद्ध असंतोष जागरण पर हम विशेष ध्यान दे, समाधान की दिशा में किसी सक्रियता से यह मंच निर्लिप्त रहे। असंतोष जागरण के लिए वर्तमान व्यवस्था के गलत कार्यों के विरोध तक ही सीमित रहा जाय। विरोध के नाम पर अनावश्यक मुद्दे उठाने से बचें।
2. यह मंच शासन के अधिकारों का विराध करेंगा, आदेशो के विरोध तक सीमित नही रहेगा।
3. वर्तमान अव्यवस्था के कारणों में चरित्र की अपेक्षा नीतियों की चर्चा अधिक होगी। अपने कार्यकर्ताओं के आचरण के संबंध में भी काई संहिता नही बनेगी जब तक कोई बहुत विशष बात न हो।
4. स्वराज्य और सुराज्य के बीच ध्रुवीकरण बिल्कुल स्पष्ट और सीधा हो। जो लोग सत्ता के माध्यम से विकास की बात करते हैं, उन्हे विरोधी माना जायेगा क्योंकि जब अपराध अनियंत्रित हो तो विकास और चरित्र निर्माण शासन का काम नही,, समाज का काम होता हैं।
5. समानता की नई परिभाषा प्रचारित करे सक्षमों को समान स्वतंत्रता और अक्षमों को समान सुविधा। सक्षम और अक्षम के बीच शासन अपनी क्षमता के अनुसार सीमा रेखा बना सकता है।
6. आंदोलन पूरी तरह अहिंसक और अधिकतम संवैधानिक तरीके से होगा।
7. वर्तमान समय में हमारा आंदोलन पूरी तरह जन जागृति तक केन्द्रित होगा। टकराव की स्थिति को हर हालत में टाला जायेगा।
8. संविधान संशोधन के चार मुद्दो में से प्रथम प्रतिनिधि वापसी और द्वितीय परिवार, गॉव, जिले के अधिकारों को संविधान में शामिल करने को अन्य 2 मुद्दो नीति–निर्देशक सिद्धान्त बाध्यकारी होने और विदेशो से समझौतों की संसदीय स्वीकृति से अधिक महत्व दिया जायेगा।
9. व्यवस्था परिवर्तन अभियान में भविष्य में संगठनों की अपेक्षा व्यक्तियों को शामिल करने का अधिक प्रयास किया जायेगा। संगठन को जोड़ने के पूर्व गंभीर विचार मंथन आवश्यक ह।
10. मुख्य वचन राजनीति से दूर रहकर राजनीति पर नियंत्रण का अद्भूत प्रयास लिखा जाय। इस पर चर्चा में कई सूझाव आये, कुछ लोग प्रारंभ में दलगत शब्द जोड़ने के पक्ष में रहे। निर्णय अधूरा रहा, आगे फैसला होने तक स्थानीय समितियां दानो में से कोई भी वाक्य लिख सकती है।
11. व्यवस्था परिवर्तन अभियान के बैनर तले 4 मुद्दो पर जनमत जागरण के अतिरिक्त अन्य किन्ही विषयों पर सेवा कार्य या आंदोलन को प्राथमिकता नही दी जायेगी, किन्तु किसी अन्य बैनर तले कोई भी अन्य विषय उठाने में मंच के कार्यकर्ताओ को कोई आपत्ति नहो है।
12. सब सुधरेगा तीन सुधरे नेता, कर, कानून हमारे इस नारे को अधिक से अधिक प्रसारित किया जायेगा। सब कार्यकर्ता दीवार लेखन, बाड़, बैनर, पोस्टर आदि का सहारा ले सकते है।
13. चार मुद्दे के अतिरिक्त अन्य मुद्दो पर विचार भिन्नता रखने का कार्य करने की सबकों पूर्ण स्वतंत्रता होगी। किसी के अन्य मुद्दे पर काम करने का वैचारिक विरोध किया जा सकता है, संगठनात्मक विरोध नही।

14. विरोध के लिए निम्न मुद्दे प्रेरक हो सकते है, 1 सांसदां को दी जाने वाली सांसद निधि का विरोध 2 बिजली का असमान वितरण 3 साइकिल पर भारो कर लगाने का विरोध. 4 डिब्बा बंद सरसों तेल, आयोडीन युक्त नमक, हेलमेट सरीखे जनहित के मुद्दा को कानून द्वारा लागू कराने का शासन का अधिकार।

15. हस्ताक्षरित संकल्प पत्र 2 या 3 अक्टूबर का किसी उपयुक्त संस्था को समारोह पूर्वक दिया जायेगा।

## संगठन संबंधी

1. पूरे देश को 100 परिक्षेत्रो मे बॉटकर प्रत्येक क्षेत्र से एक सदस्य को शामिल करके केन्द्रीय कार्यकारिणी का गठन करना है। हिमांचल, उत्तरांचल एक–एक, छत्तीसगढ़, पंजाब, हरियाणा दो–दो, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात पॉच–पॉच बिहार सात, उत्तर प्रदेश में सोलह, परिक्षेत्र हागें। अन्य प्रदेशो के भी इसी क्रम में परिक्षेत्र बनेंगे।

2. प्रत्येक परिक्षेत्र में एक कार्यकारिणी का गठन होगा जिसमें 100 सदस्य, एक अध्यक्ष, 10 उपाध्यक्ष, एक सचिव, एक कोसाध्यक्ष होगे।

3. प्रत्येक परिक्षेत्र में उतने जिले शामिल किये जायेगे जितने उस प्रदेश के आधार पर आवश्यक होगे। परिक्षेत्र का परिसीमन लोकसभा क्षेत्रो के आधार पर न करके जिलो के आधार पर होगा।

4. केन्द्रीय कार्यकारिणी का प्रत्येक सदस्य उस परिक्षेत्र में संकल्प पत्र भरवाने का भी संयोजक होगा।

5. न्यूनतम 10 परिक्षेत्रो के संगठन की व्यवस्था करने वाले कार्यकर्ता को राष्टोय सह–संयोजक कहा जायेगा।

6. श्री अब्दुल भाई तमिलनाडु व श्री एम.एच.पाटिल कर्नाटक को सह–संयोजक श्री कैलाश जी को राष्टोय महासचिव तथा श्री शिव दत्त तिवारी जी को कार्यालय सचिव का दायित्व दिया गया। आचार्य पंकज जी राष्टोय हस्ताक्षर प्रमुख है। अब्दुल भाईजी, श्री पाटिल जी, कैलाश जी, तथा श्री शिव दत्त जी अपने अन्य दायित्वों के साथ–साथ हस्ताक्षर अभियान में भी सहायता करते रहेंगें।

7. एक अगस्त को लोकमान्य तिलक जयन्ती के अवसर पर तिलक जी के जन्म स्थान पना महाराष्ट से व्यवस्था परिवर्तन अभियान यात्रा प्रारंभ होगी जो 2 अक्टूबर गांधी जयंती पर गांधी समाधि, राजघाट दिल्ली में समाप्त होगी। इस यात्रा में बजरंगलालजी, गोविंदाचार्यजी, तथा आचार्य पंकज जी से नेतृत्व करने का आग्रह किया जाय। यात्रा परिस्थिति अनुसार एक या एक से अधिक भी हो सकती है। सम्पूर्ण भारत के अधिकतम हिस्से को यात्रा से जोड़ा जायेगा। यात्रा में प्रतिदिन 2 स्थानो पर कार्यक्रम रखे जाये। प्रत्येक कार्यक्रम में तैयारी अनुसार बैठक, आमसभा, पत्रकार वार्ता, का आयोजन हो सकता हैं। प्रत्येक कार्यक्रम में आयोजक गाड़ी खर्च हेतु 500 रूपया न्यूनतम आवश्यक रूप से देगा।

## ज्ञान यज्ञ

1. चार मुद्दो के अतिरिक्त अन्य अनेक विषयों पर स्वतंत्र विचार मंथन की प्रक्रिया शुरू की जायेगी। प्रत्येक माह की 6,7,8 और 9 तारीखो को दिल्ली में प्रतिदिन एक–एक विषय पर स्वतत्र विचार गोष्ठी रखी जायेगी। विषय का चयन आयोजक करेंगे। विषयों म बजरंगलालजी द्वारा प्रस्तावित 160 विषयों में से किसी एक का भी चयन हो सकता है, तथा भिन्न विषय का भी। चर्चा पूरी तरह स्वतंत्र विचार मंथन के रूप में होगी। प्रत्येक माह की 6 तारीख को मेवाड़ इन्स्टीट्यूट, वसुंधरा, गाजियाबाद, 7 को मयूर विहार फेज–1, 8 को मुखर्जा नगर, 9 को आर्य समाज मंदिर कनाट प्लेस में विचार मंथन सभा होगी।

2. केन्द्रीय कार्यकारिणी का प्रत्येक सदस्य 15 स्थापित समाजशास्त्री व विचारको की सूची कार्यालय को यथा शीघ्र देगा। इस सूची में सामाजिक चिंतक, राजनैतिक आर्थिक विद्वान, साहित्यकार, कलाकार, किसी विषय के विशेषज्ञ सहित ऐसे सभी लोग शामिल हो सकतें है, जो समाज में विश्वसनीय हो तथा संविधान की मूल भावना व भाषा पर विचार दे सकते है। शिक्षा शास्त्रियों, संविधान विदा, न्यायाधीशों, प्रमुख वकीलों, तथा स्थापित विचारकों पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। ऐसे विद्वान की टीम से निरन्तर विचार मंथन शुरू किया जायेगा।

3. ज्ञान यज्ञ मंडल इन विद्वानों में से न्यूनतम 1000 की टोम को लोक संविधान सभा घोषित करके दिल्ली में एक माह का सम्मेलन आयोजित करेगा। यह लोक संविधान सभा एक माह में भारतीय संविधान में प्रस्तावित संशोधनों को प्रारूप तैयार करके समाज को समर्पित करेगी। संविधान सभा के विचारण में मुख्य आधार बजरंगलाल के नेतृत्व में विचारकों द्वारा निकाले गये संविधान संशोधन प्रस्ताव तो होंगे ही, अन्य विद्वानों के प्रस्तावित संशोधनो को भी आधार बनाया जायेगा।

4. ज्ञान यज्ञ मंडल तथा व्यवस्था परिवर्तन अभियान के व्यय हेतु ज्ञान यज्ञ मंडल की संरक्षाण सभा व्यवस्था करेगी। संरक्षाण सभा में न्यूनतम 1000 रूपय वार्सिक दान देने वालों को सदस्य बनाया जाता है। केन्द्रीय कार्यकारिणी के सदस्य तथा अन्य कार्यकर्ता अधिक से अधिक संरक्षक सदस्य बनाने का प्रयास करेगे। संरक्षण सभा क अध्यक्ष अशोक गाडिया जी होगें।

5. परिक्षेत्र समिति यदि व्यवस्था परिवर्तन अभियान के अर्न्तगत कोई धन संग्रह करती है तो संरक्षक सदस्यता को छोड़कर अन्य धन खर्च करने हतु वह समिति स्वतंत्र होगी। केन्द्रीय कार्यालय उस आय–व्यय का कोई हिसाब नही मांगेगा।

6. परिक्षेत्र समिति ज्ञान तत्व के अधिक से अधिक ग्राहक बनाकर 500 रूपये आजीवन या 50 रूपया वार्सिक शुल्क कार्यालय को भेजेगी।

7. ज्ञात तत्व में लिखे गये बजरंगलाल के विचार उनके व्यक्तिगत है। व्यवस्था परिवर्तन अभियान से यदि भिन्न है, या आपकी असहमति हा तो आप उनका विरोध कर सकते है।

## कार्य

1. व्यवस्था परिवर्तन अभियान के प्रत्येक कार्यकर्ता से अपेक्षा है कि वह यथाशीघ्र संकल्प पत्र भरवाकर केन्द्रीय कार्यालय को प्रेषित करें।

2. व्यवस्था परिवर्तन अभियान यात्रा के कार्यक्रम हेतु प्रस्ताव शीघ्र भेजें। जिससे आपके प्रदेश, परिक्षेत्र और शहर को भी सम्मिलित करने का प्रयास हो सके।

3. अन्य मुद्दो पर भी त्वरित सक्रियता आवश्यक है।

**शिवदत तिवारी कार्यालय सचिव**

# आंकड़ों का खेल और हमारा जनजीवन

**बजरंगलाल**

स्वतंत्रता के ' शीघ्र बाद संसद में पं. नेहरू और लोहिया के बीच आर्थिक आकड़ो पर बहस हुई थी। पं. नेहरू ने भारत के नागरिको की औसत आमदनी तेरह आने बतायी थी, और लोहिया जी ने तीन आने। दोनो ने ही एक दूसरे को चुनौती दी थी। सारे भारत में यह बहस चर्चा का विषय बनी। आंकड़ो की बाजीगरो ने दोनों को सच प्रमाणित कर दिया। लोहिया जी के कहने का आशय औसत व्यक्तियों की आय से था।और नेहरू जी का आशय व्यक्तियों की औसत आय से था। दोनो नेता जीत गये थें। किन्तु जन जीवन पर इस सम्पूर्ण बहस का प्रभाव शून्य रहा। भारत के आम लोगों का जीवन उसी तरह चलता रहा।

स्वतंत्रता के बाद आधी सदी से अधिक बीत गयी है। एक से बढ़कर एक आंकड़े मिलने लगे है। कम्प्यूटर यग में भी हम पहुॅच चुके है। दिन रात करोड़ो रूपया आर्थिक विश्लेषण पर खर्च होता रहता हैं। सरकार तो आर्थिक विश्लेषण करती ही रहती है किन्तु आर्थिक विद्वान और आर्थिक समाचार पत्र भी दिन–रात अर्थव्यवस्था की बाल की खाल निकालते रहते है। किन्तु इतने वष बाद भी भारत औसत व्यक्ति यह नहीं जान सका कि स्वतंत्रता के बाद उसकी आर्थिक स्थिति पर क्या और कितना प्रभाव पड़ा? भारत में गरीबी घटी या बढ़ी? पचपन वर्षा में भारत के सामान्य व्यक्ति के जीवन स्तर में क्या अंतर आया? मैने स्वयं बहुत पढ़ा। अनेक अर्थशास्त्रियों के विचार सुनें। सरकारी आंकडो का भी अध्ययन किया। किन्तु किसी परिणाम तक नही पहुॅच सका। मैं इस परिणाम तक अवश्य पहुॅचा कि अर्थव्यवस्था के मामलें में आकड़ो का जो खेल है वह स्वाभाविक न होकर जानबूझकर भ्रम फैलाने का माध्यम है।

वर्तमान समय में हमारे विकास संबंधी चार प्रकार के आंकड़ें ज्यादा प्रसारित होते है। 1 मुद्रा स्फीति 2 सेन्सेक्स 3 सकल घरेलू उत्पाद और आर्थिक विकास दर 4 गरीबी रेखा के उपर नीचे की संख्या। पुराने जमाने में तो ये चारो बाते टीवी, रेड़ियो या अर्थशास्त्रियों, तथा राजनेताओ के भाषणों में यदा–कदा ही सुनाई पड़ती थी। किन्तु अब तो ये बातें आम तौर पर इस तरह बताई जाती है कि जैसे इनका उतार–चढ़ाव हमारे जन–जीवन में परिवर्तन का कोई मापदंड हो। मुद्रस्फीति की घट–बढ़ की प्रति सप्ताह की सूचना आम नागरिकों तक इतनी गंभीरता से दी जाती है कि भारत का आम नागरिक मुद्रा स्फीति के बढ़ने से भयभीत और घटने से प्रसन्न होने लगा है। भारत का आम नागरिक यह बिल्कुल नही जानता कि मुद्रा स्फीति क्या है? उसका प्रभाव क्या है? मुद्रा स्फीति क्यों हैं? किन्तु वह इतना अवश्य ही जानने लगा है कि मुद्रा स्फीति वर्तमान सप्ताह में कितनी घटी या बढ़ी और उससे हमारे सामान्य जन–जीवन पर कुछ अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ा। इसी तरह शेयर बाजार के सेन्सेक्स की चर्चा है। पतिदिन दिन भर में कई–कई बार शेयर बाजार के सेंन्सेंक्स की जानकारी आम जनता को दी जाती है। और उस सेंन्सेक्स की घटा–बढ़ी को आधार बनाकर हमारे नेतागण या अर्थशास्त्री हमारे सामान्य जन–जीवन के प्रभाव का आकलन भी प्रसारित करते है। कुछ वष पहले एक बार सेंन्सेक्स बढ़कर सात हजार हुआ था। तो हमारे नेताओं ने सेन्सेक्स में इतनी वृद्धि पर भारी चिंता व्यक्त की थी। और उस पर रोक लगाने के कानूनी प्रयत्न किये थे। आज वही सेन्सेक्स बढ़कर दस हजार का आंकड़ा छू रहा है। तो खुशियॉ मनायी जा रही है। अटल सरकार के पतन के समय एकाएक सेन्सेक्स गिरा तो सम्पूण देश में आर्थिक चिंता की लहर दौड़ा दी गयी। भारत का आम आदमी समझने लगा कि कोई भारी विपत्ति आ गई है। दो–तीन दिन बाद सेन्सेक्स सुधरा तो सबने राहत की सॉस ली। किन्तु मुझे तो न उस समय कुछ समझ में आया और न आज, कि इस ससेक्स के उतार–चढ़ाव की दैनिक जानकारी हमारे सामान्य जन जीवन के लिये कितनी उपयोगी है, कितनी प्रभाव ड़ालने वाली है।

एक तीसरी बात हम और सुनते है, वह है भारत की घटती–बढ़ती विकास दर। भारत के पधानमंत्री तक अपने अधिकांश भाषणों में भारत की घटती–बढ़ती विकास दर की बहुत व्याख्या और चिंता करते हैं। भारत के 99 प्रतिशत लोग तो आज तक यह अंतर नही कर सके कि जी.डी. पी. सकल घरेलू उत्पाद और विकास दर वृद्धि में क्या फर्क है, और किसका सामान्य जन–जीवन पर कितना और क्या प्रभाव पड़ता है कभी इनकी विकास दर की संभावना सात हो जाती है तो बहुत चिंता बढ़ जाती है। और कभी संभावना आठ प्रतिशत हो जाती है तो बहुत प्रसन्नता दिखने लगती है।

चौथी बात गरीबी रेखा की भी सुनते हैं। भारत में गरीबी रेखा ने नीचे जीवन यापन करने वालों की संख्या भी लगातार कम–ज्यादा हाते रहती है। गरीबी रेखा भी एक तिलिस्म है, जिसका कोई ओर–छोर पता नही चलता। भारत में निन्यानब्बे प्रतिशत लोग नही जानते कि गरीबी रेखा का मापदंड क्या है? इसके घटने–बढ़ने का आधार क्या है? तथा इस रेखा का प्रभाव क्या पड़ता है?

मैने भी अन्य बेकार की कसरत कर रहे अर्थशास्त्रियों और राजनेताओं के समान इन चारो शब्दों पर बहुत माथा पच्ची की तो पाया कि मुद्रा स्फीति का सामान्य जन–जीवन पर नगण्य प्रभाव पड़ता है। मुद्रा स्फीति का छोटा सा अर्थ होता है नगद रूपये पर अघोषित कर। जिनके पास नकद रूपया होगा, उनके रूपये का मूल्य ह्रास होगा। बाकी न गरीब पर इसका प्रभाव पड़ता हैं न बड़ी–बड़ी संपत्ति वालो पर। मुद्रा स्फीति और महंगाई को एक साथ मिलाकर समाज में बेकार की ऐसी तस्वीर पेश होती है जैसे मुद्रा स्फीति में वृद्धि ने गरीबों के जन–जीवन पर व्यापक प्रभाव ड़ाला हो। हर आदमी हवा में ही कभी मुद्रा स्फीति से दुःखी हो जाता है तो कभी खुश। जबकि उसके जन–जीवन पर कोई प्रभाव दिखाता ही नही।

सेन्सेक्स का भी सामान्य जन–जीवन पर शून्य प्रभाव पड़ता है। सेंन्सेक्स तीन हजार से बढ़कर दस हजार हो गया है। तो निन्यानबै प्रतिशत लोगो पर कोई बहुत अच्छा प्रभाव पड़ गया हो ऐसा मुझे कही नही दिखाई देता।

गरीबी रखा की भी एक स्वःनिर्मित परिभाषा है। सामान्य जनजीवन में सुधार दिख रहा है किन्तु इसके बाद भी गरीबी देखा की रोज की घट–बढ़ का पता नही चलता कि वह रेखा क्या है। कुछ दिनो पूर्व गरोबी रेखा की परिभाषा बदलने की बात उठो। सामान्य जन न तो वर्तमान परिभाषा जानता है और न सुधरी हुई परिभाषा की उसके दिमाग में कोई कल्पना है।

अब तक मैं नही समझ सका कि मुद्रा स्फीति की घट–बढ़, सेसेक्स, विकास दर और गरीबी रेखा के दैनिक, साप्ताहिक घट–बढ़ का जन जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है। या ये आकड़े सामान्य जन जीवन के कैसे परिवर्तन के आंकड़े पेश करते हैं। यदि तुलनात्मक आंकड़े चारी डकैती, बलात्कार, मिलावट, आतंकवाद भ्रष्टाचार, चरित्र पतन, आर्थिक असमानता, साम्प्रदायिकता आदि के साप्ताहिक न होकर वाषिक भी प्रस्तुत होते तो हम जनजीवन के प्रभाव का भी आकलन कर पाते और शासन की सफलता और विफलता के भी। लेकिन पता नहीं क्यों हमारी सरकारें या अन्य आंकड़ो के बाजीगर इन मुद्दों के तुलनात्मक आंकड़े प्रस्तुत न करके ऐसे तुलनात्मक आंकड़े प्रस्तुत करते हैं जिनका न हमें कोई ज्ञान है, न ही प्रत्यक्ष प्रभाव दिखता हैं शायद हमारी मानसिकता को भ्रमजाल में उलझाकर कुत्ते की हड्डी के समान अपने ही खून का स्वाद लेकर प्रसन्न होते रहने में उलझाना ही इन बाजीगरों का उद्देश्य है।

यदि विकास को मानव के न्यूनतम श्रम मूल्य के साथ जोड़ दिया जावे तो शायद अधिक साफ संदेश जायेगा। न्यूनतम श्रम मूल्य को मूल रूपये के आधार पर आकलित करके प्रतिवष घोषित करने की नई परंपरा डाल दीजियें। भारत की आम जनता को न मुद्रा स्फीति से कोई मतलब रहेगा, न ही सेन्सेक्स से। गरीबी रेखा, विकास दर, सकल घरेलू उत्पाद, महंगाई आदि आंकड़ो की आंख मिचौली से भी मुक्ति मिल जायेगी। मूल रूपये के आधार पर न्यूनतम श्रम मूल्य में जितने प्रतिशत वृद्धि होगी वही पूरे भारत की विकस दर होगी। आम नागरिकों के जीवन स्तर पर न्यूनतम श्रम मूल्य का स्थिर प्रभाव पड़ना निश्चित है। न्यूनतम श्रम मूल्य वृद्धि हो तो चाहे मुद्रा स्फीति जितनी बढ़ जावे, सेन्सेक्स और विकास दर बढ़े या न बढ़े आम नागरिक उससे चिन्तित नहीं होगा क्योंकि उसका श्रम मूल्य मूल रूपये के आधार पर बढ़ा है। उपर ताला तबका सेन्सेक्स और विकास दर की चिंता करेगा, क्याकि यह सब उसके जनजीवन का एक अंग है श्रम जीवियों के जीवन स्तर का नहीं। गरीबी रेखा के नीचे जीने वालों की सीमा रेखा बदलने से भी मतलब विशेष नहीं रहेगा। सिर्फ बिल्कुल अपाहिज लोगों की एक सीमा रेखा बनाकर उनके भरण पोषण की व्यवस्था करनी होगी।

मैं समझता हूँ कि आंकड़ों की बाजीगरी ने पूरे भारत में अब तक बहुत भ्रम पैदा किया है। सामान्य लोग भी आंकड़ों के आधार पर मृगतृष्णा के शिकार बन रहे है। राजनीतिज्ञों के लिये तो यह एक ऐसा खेल बन गया है जिसका सिर्फ आनन्द उठाना मात्र उसका उद्देश्य है। बाकी सारी भूमिका तो सामान्य नागरिकों की है विकास की परिभाषा में न्यूनतम श्रम को मूल रूपया एक निश्चित वष के स्थिर रूपया के आधार पर मान लेने के बाद सारा भ्रम पूरी तरह समाप्त हो जायेगा और आम आदमी अपने सच को वास्तविक स्वरूप में देखने में समर्थ हो सकेगा।

## फांसी की सजा और विकल्प

सारी दुनियॉ में फांसी की सजा के औचित्य पर बहस चल रही है। अनेक देशों ने फांसी की सजा पर रोक लगा रखी है। अनेक देशों म फांसी पर अनौपचारिक रोक है। तथा अपवाद स्वरूप ही फांसी होती है। भारत में लगातार इस मुद्दे पर बहस चलती रहती ह। धनंजय की फांसी के समय इस विषय ने अधिक तूल पकड़ा। अभी राष्टपति अब्दुल कलाम ने फांसी की सजा पर प्रश्न उठाकर इस बहस में नई जान डाल दी है। सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायधीश तक इस बहस में कूद पड़े। भारत में भी फांसी की सजा का औचित्य एक विचारणीय मुद्दा बनता जा रहा है।

पहले इस सजा की परिभाषा और उसके औचित्य पर विचार करें। जब किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता किसी अन्य व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक बनती है तब बाधक व्यक्ति की स्वतंत्रता में कटौती को सजा कहतें हैं। ऐसी स्वतंत्रता के दुरूपयोग को अपराध कहते हैं। दण्ड़ के तीन औचित्य माने जाते हैं। 1. पीड़ित को राहत 2. अपराधी में भय 3. समाज में भय। दण्ड के औचित्य में प्रथम और द्वितीय की अपेक्षा तृतीय को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि पहले और दूसरे का उपयोग अपराध के बाद का है किन्तु तीसरा उपयोग पूर्व सतर्कता के रूप में होता है जो समाज में व्यवस्था का भय पैदा करके उसे अपराध से दूर करता है। दण्ड कभी मानवीय नही होता। दण्ड हमेशा अमानवीय होता है। दण्ड कभी स्थिर और निश्चित नहीं हो सकता। दण्ड की मात्रा और तरीका सदा इस बात पर निर्भर करता है कि तत्कालीन सामाजिक स्थिति में समाज पर प्रभावोत्पादक भय पैदा करने के लिए दण्ड की मात्रा और तरीका क्या हो। दण्ड हमेशा मानवता और समाज पर प्रभाव के बीच संतुलनकारी होना चाहिए। यदि दण्ड आवश्यकता से अधिक अमानवीय होगा तो वह अत्याचार का स्वरूप ग्रहण कर लेगा और यदि वह आवश्यकता से कम अमानवीय होगा तो अव्यवस्था में वृद्धि करेगा। इसलिये दण्ड क तरीके आर मात्रा क लिये संतुलन पर विशेष जोर दिया जाता है।

प्राचीन समय में दण्ड बहुत अमानवीय होते थे। अमानवीय दण्ड अपराध नियंत्रण में सहायक होते हुए भी आवश्यकता से अधिक अमानवीय रूप ग्रहण करने लगे थे। जीवित व्यक्ति को दीवारों में चुनवा देना या साधारण चोरी की घटना में भी हाथ काट देना सामान्य दण्ड प्रक्रिया में शामिल हो गये। अमानवीय दण्ड देन की ललक ने अपराधों की परिभाषा भी बदल दी। वैश्यावृत्ति और नशा को भी अपराध कह कर दण्ड देने की प्रथा शुरू हो गई जबकि असामाजिक कार्य अपराध नही होता। अपराध तो सिर्फ समाज विरोधी कार्य ही होता है। चोरी, डकैती, लूट, बलात्कार, मिलावट, जालसाजी, धोखा, आतंक आदि समाज विरोधी कार्य होते ह आर जुआ, नशा, वैश्यावृत्ति, शोषण आदि असामाजिक। आजकल तो एक तीसरा भी अपराधों का प्रकार बन गया है जो न समाज विरोधी है न असामाजिक बल्कि वह सिर्फ गैरकानूनी मात्र है। जिसमें बालश्रम, छुआछूत, हरिजन, आदिवासी, महिला कानून उल्लंघन, तस्करी, ब्लैक आदि शामिल है। शासन और समाज की नासमझी से गैर कानूनी, असामाजिक और समाजविरोधी को मिलाकर एक कर दिया गया और सबके लिये अमानवीय दण्ड दिया जाने लगा। गांजा बेचने या पीने को मारपीट की अपेक्षा अधिक कठोर दण्ड का प्रावधान नासमझी का एक उदाहरण है। परिणम स्वरूप समाज में दण्ड के मानवीयकरण की मांग उठी। हजारों वष पूर्व के अति अमानवीय दण्ड व्यवस्था के सुधार की मांग तो उचित थी किन्तु गैर कानूनी और असामाजिक कार्यों को अपराध मानकर दण्ड देने पर नियंत्रण के स्थान पर सभी अपराधों में दण्ड को मानवीय बनाने की मांग गलत थीं। किन्तु यह गलती हुई। दण्ड को इतना अधिक मानवीय करने की सनक सवार हुई कि दण्ड अपना प्रभाव खोने लगा। समाज में भय कम से कम होता चला गया और ज्यों–ज्यों भय कम हुआ त्यों–त्यों अपराधों में भी वृद्धि होने लगी।

प्राचीन समय में सार्वजनकि फांसी का प्रावधान था जो समाज में बहुत अधिक भय कारक होता था। उसे मानवीय बनाते–बनाते गुप्त फांसो में बदल दिया गया। अब फांसी की सजा को समाप्त करने की बात शुरू हुइ। फांसी की सजा मानवीय है या अमानवीय इस मुद्दे पर अनावश्यक बहस छिड़ी है। यह बहस पूरी निरर्थक और बैठे ठाले की कसरत है, क्योंकि दण्ड मानवीय होता ही नहीं। बहस इस बात पर होनी चाहिए कि भारत के वर्तमान आपराधिक वातावरण में समाज में पर्याप्त भय पैदा करने के उददेश्य से न्यूनतम अमानवीय दण्ड क्या हो। जो लोग फांसी के विरोधी है उन्हे यह भी बताना होगा कि फांसी की अपेक्षा ऐसा विकल्प क्या है जो अधिक प्रभावोत्पादक होते हुए भी अधिक मानवीय हो। विदेशी या स्वदेशी धन लेकर मानवाधिकार के नाम पर अपनी रोजी–रोटी चलाने के लिये फांसी का विरोध करना तो एक अलग बात है, किन्तु फांसी का प्रभवकारी विकल्प ये पेशेवर लोग नही सोच रहे। अभी–अभी संघ प्रमुख सुदर्शन जी ने मानवाधिकार संगठनों के लिये बिल्कुल भिन्न टिप्पणी की। मैं सुदर्शन जी को टिप्पणी से पूरी तरह सहमत हूँ कि मानवाधिकार के नाम पर देश में दुकानदारी शुरू हो गई हैं। अन्यथा ये मानवाधिकार प्रेमी मानवीय दण्ड के साथ प्रभावी दण्ड का भी संतुलन बनाने का प्रयास अवश्य करते।

मैंने भी फांसी की सजा पर बहुत विचार किया। मैने महसूस किया कि फांसी की सजा का कोई ऐसा विकल्प हो जो हत्या से अधिक अमानवीय भी न हो और समाज पर हत्या से अधिक समय तक भय कारक हो। मेरे विचार में यह प्रावधान किया जाय कि यदि फांसी की सजा घोषित व्यक्ति अपनी दोनों आंखे निकलवाकर जीवित रहने की न्यायालय स याचना करे तो न्यायालय उपयुक्त शर्तो के साथ उसे जमानत पर तब तक के लिये छोड़ सकता है जब तक वह जीना चाहे। इस प्रावधान से हमारे सभी उद्देश्य एक साथ पूरे होते है। यह दण्ड हत्या की अपेक्षा कम अमानवीय होगा और समाज पर लंबे समय तक प्रभाव डालेगा। इस प्रावधान से परिवार पर बोझ पड़ेगा। परिवार में उस व्यक्ति का जोना भी कष्ट कारक होगा ओर हत्या से बचाना भी आवश्यक ही होगा। उस व्यक्ति के लिये भी अंधा बनकर जीवन जीना मृत्यु से कम कस्ट दायक नहीं होगा।

सामान्यतया लोग अंधा बनाकर स्वतंत्र छोड़ने को हत्या से भी अधिक अमानवीय मानेंगे। मेरे समझ में ऐसे प्रश्नकर्ताओं को समाज शास्त्र का ज्ञान नहीं। हम उसे अंधा बनने हेतु मजबूर नहीं कर रहे। हत्या और अंधाकरण में से उसे ही एक चुनना है। कौन सा अधिक अमानवीय है यह निर्णय उसके हाथ में है। यदि वह व्यक्ति हत्या की अपेक्षा अंधा बनकर जीने की इच्छा व्यक्त करे और उसका परिवार सहमत हो तो आपका अमानवीय या बोझ कहना कितना उचित हैं? यदि विकल्प चुनने का अधिकार उसे है तो वह अधिक अमानवीय हो ही नहीं सकता। एक प्रश्न और आता है कि वह समाज पर बोझ बन जायेगा। विचारणीय यह प्रश्न और है कि वह पुनः वैसा अपराध अंधेपन में भी कर सकता है या आंख लगवा सकता है। तो न्यायालय उसें शर्तों के साथ जमानत पर छोड़ रहा है यदि उसकी गतिविधियां थोड़ी भी विपरीत हुई तो उसे जमानत रद्द करके फांसी दे दी जायेगी।

मैं तो देश के वर्तमान आपराधिक ग्राफ वृद्धि को देखते हुए अंधाकरण प्रावधान लागू होते तक के लिये प्रतीक रूप से कुछ सार्वजनिक फांसी के पक्ष में हूँ। दण्ड को समाज में पर्याप्त भयोत्पादक होना ही चाहिए। यदि साल छः महीने भी सार्वजनिक फांसो देने की प्रथा शुरू हो जांये तो अपराध जगत में उसका व्यापक असर पड़ेगा। कुछ लोग सार्वजनिक फांसी का विराध भी करेंगे क्योंकि विरोध करना उनकी आदत नहीं है, पेशा है। मुझे तो ऐसे लोगों की नीयत पर ही शक होने लगता हैं। ये कैसे समाज शास्त्री है जो न्यायालय द्वारा दोष सिद्ध अपराधी धनंजय की विधिवत हत्या का भी विरोध करते है और अंसल प्लाजा में पुलिस द्वारा दो अपराधियों को पकड़कर बिना मुकदमा चलाये ही अवैध रूप से गोली मार देने का भी, किन्तु यहि लोग नागपुर की अदालत में भीड़ द्वारा अक्कू यादव की हत्या का समर्थन कर देते हैं। मैं नही समझ सका कि ऐसे लोगों को क्या मानू? क्या समझू? इसलिये

हमें चाहिए कि ऐसे लोगों को दरकिनार करते हुए हम निर्णायक कदम उठावे। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि दण्ड के अमानवीय होने की अपेक्षा अपराध वृद्धि अधिक अमानवीय है और हमें दण्ड की मानवीयता को अपराध नियंत्रण की आवश्यकता के साथ संतुलन बनाकर ही आगे की रणनीति बनानी चाहिए।